

जेन जेड को साधने
की सियासी जंग

ब्रिक्स: वैश्विक संतुलन व
भारत का कूटनीतिक संकल्प

₹
30/-
20/-

सत्य सदेव

www.satyasadev.com

PRGI NO : DELHIN/2017/74560

वर्ष:9, अंक:09, सितंबर - 2026

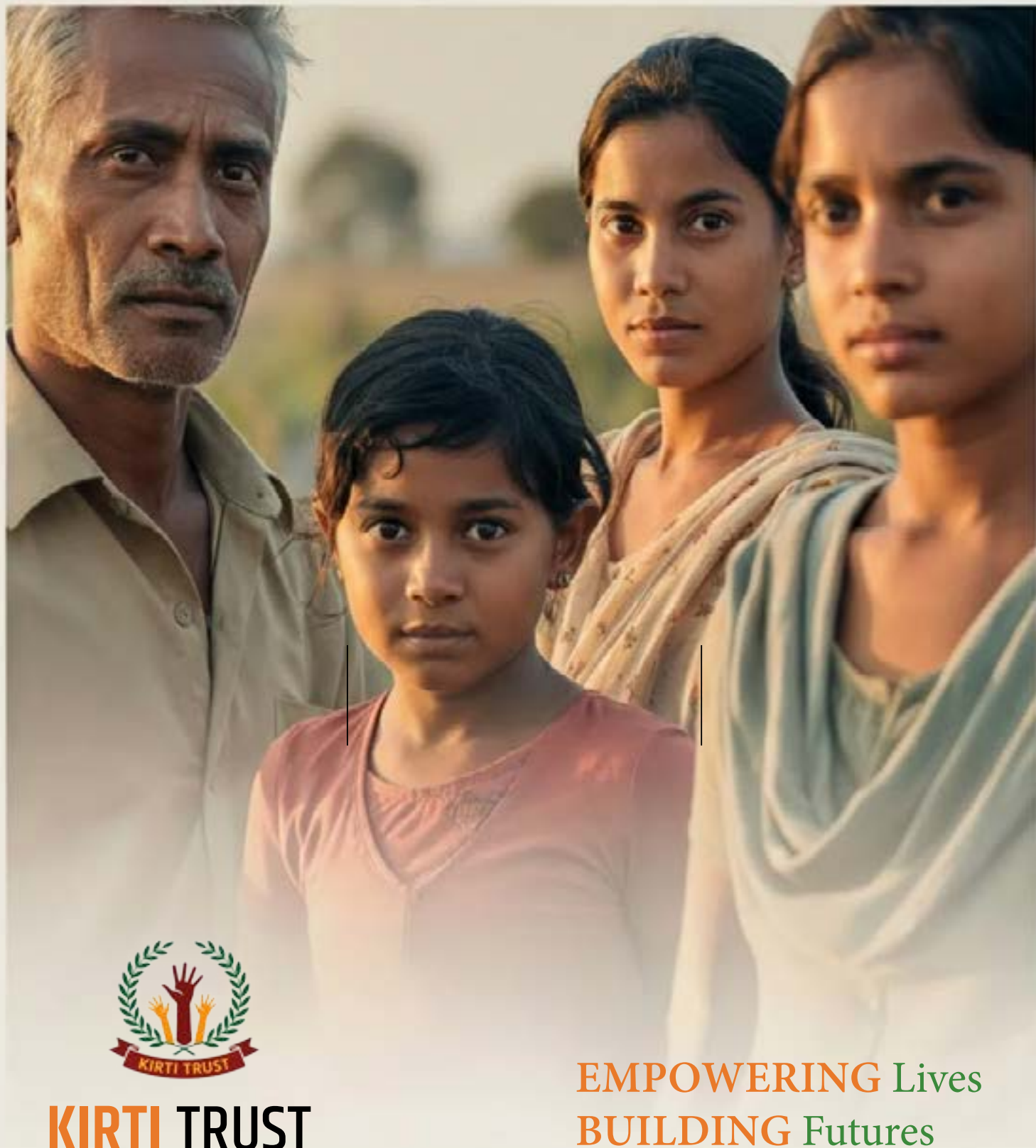
निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ



संकट में

दुनिया, संभलता भारत

युद्ध का असर | व्यापार की दीवारें | महंगा तेल
रुपये पर दबाव | निवेश की हकीकत | 2030 की परीक्षा



KIRTI TRUST

Compassion • Empowerment • Sustainability

EMPOWERING Lives BUILDING Futures

CONTACT US

Head Office

M-131 ABL Work Space,
Connaught Place,
New Delhi-110001

Regd. Office

S-505, School Block,
Shakarpur, New
Delhi-110092

Project Office

Village & Post Office Kathura
District Sonipat (Haryana)
PIN- 131301



@kirtitrust



fb.com/kirtitrust



@kirti_trust



www.kirtitrust.org



info@kirtitrust.org



+91-9254-29-3293

+91-9050-29-3293

संपादकीय मंडल

संपादक : राकेश कुमार
मुख्य कार्यकारी संपादक : श्रीराजेश

संपादकीय बोर्ड

राष्ट्रीय संपादक : संजय श्रीवास्तव
राजनीतिक संपादक : शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
मेट्रो संपादक : डॉ. रुद्र नारायण, शिव कुमार माहेश्वरी
रोमिंग संपादक : सचिदानंद पांडेय
ग्रामीण एवं कृषि मामलों के संपादक : डॉ. राजा राम त्रिपाठी
विदेश संपादक : श्रीश पाठ
विदेश मामलों के संपादक : गगन बत्रा
डिजिटल संपादक : जलज श्रीवास्तव
साहित्य संपादक : प्रो. (डॉ.) संजय जायसवाल, अनवर हुसैन
उप संपादक : विशाल श्योकंद, व्यास तिवारी
सहायक संपादक : सचिता सेन, मनोज कुमार, संतु दास
कला संपादक : अरुण पटेल, अमर नंदी
फोटो संपादक : विवेक पांडेय
विधि संपादक : अधिवक्ता नसीब दलाल

संपादकीय संचालन

वेब एवं सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ : अनुज कुमार सिंह, अभिजीत पाठक
जनसंपर्क अधिकारी : संगीता रानी
वित्तीय अधिकारी : ललित
विपणन एवं प्रसार : नीतिश भारद्वाज
चार्टर्ड अकाउंटेंट : शिव शंकर झा

संपादकादाता मंडल

विशेष संपादकादाता : कमलेश झा
संपादकादाता : संदीप सिंह, अनिरुद्ध यादव

अंतरराष्ट्रीय व्यूह

देश : व्यूह प्रमुख
संयुक्त राज्य अमेरिका : अंकुल बत्रा
नीदरलैंड : सी. शेओवरतन
यूनाइटेड किंगडम (लंदन) : जी. वर्मा
पाकिस्तान : डॉ. मोहम्मद फहीम अकबर
ईरान : ए. असागरजादेह
मलेशिया : डॉ. निक सेरी

राष्ट्रीय व्यूह नेटवर्क

शहर	व्यूह प्रमुख	शहर	व्यूह प्रमुख
नई दिल्ली	राजीव रेजिन	राजहाटी	अमित दास
लखनऊ	पंकज मोर्य	चंडीगढ़	तेज सिंह
रांची	केप्टन सुधीर सिन्हा / जितेंद्र सिंह	भोपाल	लवकी सिंह
पटना	निमेष शुक्ला	देहरादून	संजु जोशी
कोलकाता	निमेष शुक्ला	श्रीनगर	अजय शर्मा
अगरतला	दीपानु दास	शिमला	नरेश आर्य
जयपुर	आशीष कुमार	अहमदाबाद	अजय कुमार
		मुंबई	श्रीकांत

डिजिटल प्रकाशन एवं वितरण ई-वितरण:

श्रीजीत डे

संपादकीय व कॉर्पोरेट कार्यालय

वी.पी. हाउस नं. 523, कॉन्स्टीट्यूशन क्लब के समीप,
रफी मार्ग, नई दिल्ली-110001

ई-मेल: editor@satyasadev.com, वेबसाइट: www.satyasadev.com
दूरभाष: +91 9050 29 3293

उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं। पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार पूर्णतः लेखकों के अपने हैं; सत्य-सदैव का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक राकेश कुमार द्वारा मेसर्स आला प्रिंटिंग प्रेस, 3636, कटरा दिना बेग, लालकुआं दिल्ली-110006 से मुद्रित कराकर 19बी, जनता फ्लैट्स, पीरागढ़ी, नई दिल्ली 110041 से प्रकाशित

सुधि पाठकों एवं सम्मानित लेखकों से विनम्र आग्रह है कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ एवं प्रकाशनार्थ रचनाएँ ई-मेल द्वारा editor@satyasadev.com पर प्रेषित करें।



राकेश कुमार
संपादक

आपदा का भूगोल

नेपाल की त्रासदी और बिहार की बाढ़ को केवल दो अलग-अलग प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखना आसान है, लेकिन हिमालय और गंगा के भूगोल को साथ रखकर देखें तो इनके पीछे दक्षिण एशिया की बदलती जलवायु, अव्यवस्थित विकास और क्षेत्रीय राजनीति की एक साझा कहानी दिखाई देती है। 26 अगस्त को नेपाल-चीन सीमा के निकट ग्लेशियर के ढहने से शुरू हुई भयावह बाढ़ ने नेपाल में भारी तबाही मचाई; हालिया रिपोर्टों के अनुसार मृतकों की संख्या 1,300 से अधिक और लापता लोगों की संख्या हजारों में पहुंच चुकी है।

इस त्रासदी के बाद चीन की भूमिका को लेकर सवाल उठना स्वाभाविक है। तिब्बत में बड़े पैमाने पर सड़क, जलविद्युत और अन्य अवसंरचनात्मक परियोजनाओं ने हिमालयी पारिस्थितिकी पर दबाव बढ़ाया है। लेकिन यह कहना कि नेपाल की मौजूदा बाढ़ चीन द्वारा कराई गई या चीन की किसी परियोजना ने जानबूझकर यह तबाही पैदा की, अभी उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाणों से सिद्ध नहीं है। विशेषज्ञों ने ग्लेशियर के टूटने और उसके बाद भारी मात्रा में बर्फ, चट्टान और मलबे के नीचे की घाटियों में आने को प्रमुख कारण माना है; साथ ही गर्म होती जलवायु की भूमिका पर भी सवाल उठे हैं।

यहीं नेपाल के प्रधानमंत्री बालेन शाह का भारत और चीन के बीच संतुलन साधने वाला रुख महत्वपूर्ण हो जाता है। संकट की घड़ी में काठमांडू ने दोनों पड़ोसियों से सहायता ली है। यह नेपाल की उस पुरानी रणनीति का विस्तार है जिसमें वह अपनी संप्रभुता और सामरिक स्वायत्तता बनाए रखते हुए भारत और चीन-दोनों के साथ संबंधों को संतुलित करना चाहता है।

लेकिन नेपाल के विदेश मंत्री की ओर से उठाया गया “क्लाइमेट कंपनसेशन” का मुद्दा इससे भी आगे जाता है। तर्क यह है कि हिमालयी देश उत्सर्जन में अपेक्षाकृत नगण्य योगदान देते हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन के सबसे विनाशकारी परिणाम उन्हीं को भुगतने पड़ रहे हैं। नेपाल ने प्रमुख उत्सर्जक देशों से क्षतिपूर्ति और संयुक्त राष्ट्र का नुकसान और क्षति कोष जैसे तंत्रों की ओर ध्यान दिलाया है। हालांकि बाद में नेपाल के विदेश मंत्री ने स्पष्ट किया कि भारत से किसी विशेष मुआवजे की औपचारिक मांग नहीं की गई थी। नेपाल की ग्लेशियर त्रासदी से बिहार की बाढ़ तक संदेश स्पष्ट है—दक्षिण एशिया को अब आपदा आने के बाद राहत देने की राजनीति से आगे बढ़कर साझा जलवायु-सुरक्षा व्यवस्था बनानी होगी। वरना हिमालय में पिघलती बर्फ और मैदानों में चढ़ता पानी, दोनों मिलकर आने वाले वर्षों की सबसे बड़ी मानवीय चुनौती बन सकते हैं।



श्रीराजेश
मुख्य कार्यकारी संपादक

कश्मीर की सुरम्य वादियों में लौटते नव-विश्वास को खंडित करने हेतु 'मृदु-लक्ष्यों' पर प्रहार आतंक की नई छद्मवेषी रणनीति है, जो शांति की कोमल डगर और घाटी के भविष्य की अग्निपरीक्षा है।

कश्मीर: संत्रास की अंतर्धारा

कश्मीर की सुरम्य वादियों में जब बंदूकों का भीषण गर्जन कुछ क्षणों के लिए विश्राम लेता है, तो ऐसा आभास होता है मानो हिंसा की दीर्घ और अमावस-सी काली रात के पश्चात शांति की अरुणिमा ने क्षितिज पर दस्तक दी है। सड़कों पर पर्यटकों का कोलाहल, सेब के कुंजों में श्रम की थपकी और घाटी की आर्थिकी में लौटती स्पंदनशील गति इस विश्वास को अभिसिंचित करती है कि कश्मीर ने आतंक की उस भयावह विभीषिका को विस्मृति के गर्त में ढकेलना प्रारंभ कर दिया है। किंतु, आतंक की प्रकृति उस अदृश्य अंतर्धारा के सदृश है, जो धरातल पर निस्तब्ध किंतु पाताल में अत्यंत व्याकुल और उद्विग्न रहती है। जुलाई के तप्त वातावरण में कुलगाम की गलियों में दो निर्दोष प्रवासी श्रमिकों की नृशंस हत्या और अनंतनाग की वादियों में एक रक्षक का बलिदान—ये घटनाएं उसी दबी हुई ज्वाला के पुनः प्रज्वलित होने का संकेत हैं। यह केवल रक्तपात की छिटपुट घटनाएं नहीं हैं, अपितु यह उस कुटिल रणनीति का पुनरागमन है, जिसे युद्ध-कौशल की भाषा में 'सॉफ्ट-टारगेट टेररिज्म' कहा जाता है। जब आतंकवादी सुरक्षा बलों की अभेद्य दीवार से सीधी मुठभेड़ में अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं और उनकी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाएं ध्वस्त होने लगती हैं, तब वे उन निहत्थे हाथों को अपना निशाना बनाते हैं, जिन्होंने कभी हथियार का स्पर्श तक नहीं किया। आतंक अब मोर्चे के रणक्षेत्र से हटकर मनोविज्ञान के अतल गलियारों में युद्ध लड़ रहा है। अप्रैल 2025 का वह रक्तरंजित पहलगाम अध्याय इसी घृणित सोच का एक वीभत्स प्रलेख था। पर्यटकों पर किया गया वह प्रहार केवल नागरिकों की हत्या नहीं थी, अपितु कश्मीर की आर्थिकी की उन धमनियों को अवरुद्ध करने का कुचक्र था, जो इस घाटी के पांच लाख परिवारों के जीवन का आधार हैं। पर्यटन यहां की आर्थिकी का सात प्रतिशत योगदान ही नहीं देता, बल्कि यह शेष भारत के साथ कश्मीर के अटूट भावनात्मक

सेतु का निर्माण भी करता है। आतंक का एक विस्फोट केवल देह को क्षत-विक्षत नहीं करता, वह निवेश और विश्वास की कोमल कलियों को भी कुचल देता है।

कुलगाम की इस विडंबना का एक आर्थिक परिप्रेक्ष्य और भी गहन है। जब कश्मीर की माटी में सेब की तुड़ाई और संचयन का महोत्सव होता है, तब पांच लाख प्रवासी श्रमिकों का श्रम उस समृद्धि के ताने-बाने को बुनता है। किसी गैर-स्थानीय श्रमिक की छाती को छलनी करना केवल एक व्यक्ति की हत्या नहीं, अपितु उस राष्ट्रीय एकात्मता पर प्रहार है, जिसमें कश्मीर की संपन्नता और शेष भारत का पुरुषार्थ परस्पर आलिंगनबद्ध हैं। इसके मूल में जनसांख्यिकीय परिवर्तन का वह कल्पित और विषैला भय है, जिसे अनुच्छेद 370 के अवसान के पश्चात सीमा-पार के संचालकों ने बड़ी चतुराई से प्रचारित किया है। जो श्रमिक अपने पसीने से कश्मीर के वैभव को सींचता है, उसे 'बाहरी' कहकर पराया बना देना इसी मनोवैज्ञानिक समर का हिस्सा है।

किंतु, आतंक की इस परिवर्तित कार्यशैली के नेपथ्य में उसकी स्वयं की पराजय की व्यथा भी अनुगुंजित है। 2019 के उपरांत पत्थरबाजी का वह उन्माद और स्थानीय युवकों का हथियार उठाना अब इतिहास की धूल बन चुका है। 2020 में जहाँ 166 युवक पथभ्रष्ट हुए थे, वहीं 2025 में यह संख्या केवल एक तक सिमट गई। आज घाटी में सक्रिय बंदूकें अधिकांशतः सीमा-पार की आयातित मौतें हैं। वह सामाजिक उर्वरता, जो कभी आतंक की फसल उगाती थी, अब बंजर हो चुकी है। इसीलिए, अब आतंक ने अपना चोला बदल लिया है। घने अरण्यों में छिपे अपराधी अब मोबाइल की काली स्क्रीन और एन्क्रिप्टेड तंत्र के माध्यम से 'हाइब्रिड वॉरफेयर' का नया मॉडल संचालित कर रहे हैं। यहाँ बंदूक थमाने से पूर्व डिजिटल कट्टरपंथ का हलाहल पिलाया जाता है, जिससे सामान्य नागरिक भी अनजाने में हिंसा का उपकरण बन जाता है।

इस अंक में खास...



आवरण कथा

10

संकट में दुनिया...

दुनिया के आर्थिक नक्शे पर आज जो हलचल और उथल-पुथल दिखाई दे रही है, वैसी शायद पिछले 50 वर्षों के इतिहास में कभी नहीं देखी गई। हम एक ऐसे दौर में जी रहे हैं जहां पुराने नियम टूट रहे हैं और नए नियमों का अभी जन्म होना बाकी है।...



विचार का ढ़ंढ व जेन जेड

महाराष्ट्र की सांस्कृतिक और शैक्षिक राजधानी पुणे इन दिनों भारतीय राजनीति के दो विपरीत ध्रुवों के बीच छिड़े एक बड़े वैचारिक युद्ध का साक्षी बनी है। जहाँ एक तरफ कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने 'छात्रों की गूँज' कार्यक्रम के माध्यम से युवाओं, विशेषकर महिलाओं को 'पितृसत्ता को ध्वस्त'...

04



वंदे मातरम: राष्ट्रगीत या...

15 अगस्त के पावन अवसर पर कांग्रेस मुख्यालय में जो कुछ हुआ, उसे संभालने के और भी बेहतर तरीके हो सकते थे। राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम' के पूर्ण गायन को बीच में ही रोकने के सोनिया गांधी के इशारे ने जिस विवाद को जन्म दिया, उसने कांग्रेस की राजनीतिक रणनीति पर...

उत्तर प्रदेश 2027: सियासी...

भारतीय राजनीति के गलियारों में एक पुरानी और घिसी-पिटी सी लगने वाली कहावत है— 'दिल्ली का रास्ता उत्तर प्रदेश से होकर गुजरता है।' 2024 के लोकसभा चुनावों ने इस कहावत की सच्चाई को...

'हंगोर' की वापसी!

दिसंबर 1971 की वह सर्द रात भारतीय नौसेना के इतिहास में एक गहरे जख्म की तरह दर्ज है। गुजरात के तट से दूर, अरब सागर की लहरों के नीचे छिपी एक पाकिस्तानी पनडुब्बी 'पीएनएस हंगोर' ने भारतीय युद्धपोत 'आईएनएस खुकरी' पर घातक हमला किया था। चंद्र मिनटों में वह फ्रिगेट 18 अधिकारियों और 176 नाविकों के साथ समुद्र की अथाह गहराइयों में समा गया। ...

07



32



वंदे मातरमः राष्ट्रगीत या राजनीतिक परतें



जलज श्रीवास्तव

देश की मुख्य विपक्षी पार्टी, जिसके पास उठाने के लिए ज्वलंत मुद्दों की एक लंबी सूची है, उसे अपना बहुमूल्य समय इस बहस में नहीं गंवाना चाहिए कि राष्ट्रगीत के छह पद गाए जाएं या दो।

15 अगस्त के पावन अवसर पर कांग्रेस मुख्यालय में जो कुछ हुआ, उसे संभालने के और भी बेहतर तरीके हो सकते थे। राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम' के पूर्ण गायन को बीच में ही रोकने के सोनिया गांधी के इशारे ने जिस विवाद को जन्म दिया, उसने कांग्रेस की राजनीतिक रणनीति पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। शुरुआत में पार्टी ने तर्क दिया कि वे मल्लिकार्जुन खड़गे के लिए कुर्सी मांग रही थीं, लेकिन बाद में यह स्पष्ट किया गया कि वे केवल प्रथम दो पद गाने की कांग्रेस की पुरानी परंपरा का पालन करना चाहती थीं।

यह विवाद पूरी तरह अनावश्यक था। ऐसे समय में जब राहुल गांधी पिछले कुछ समय से नरेंद्र मोदी के मुकाबले एक बेहतर राजनीतिक रणनीति के साथ आगे बढ़ते दिख रहे हैं, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा चुने गए वैचारिक धरातल पर घिसटते चले जाना एक आत्मघाती कदम जैसा है।

इस पूरे प्रकरण के कुप्रबंधन के कारण कांग्रेस एक बार फिर भाजपा के उसी पुराने जाल में फंस गई, जहाँ एजेंडा भाजपा तय करती है और विपक्षी दल अपनी पूरी ऊर्जा केवल स्पष्टीकरण देने में खर्च कर देते हैं।

राष्ट्रवाद का समर्पण: व्याख्या बनाम प्रतिक्रिया

देश की मुख्य विपक्षी पार्टी, जिसके पास उठाने के लिए ज्वलंत मुद्दों की एक लंबी सूची है, उसे अपना बहुमूल्य समय इस बहस में नहीं गंवाना चाहिए कि राष्ट्रगीत के छह पद गाए जाएं या दो। भाजपा को यह कतई आवश्यक नहीं है कि कांग्रेस उसके एजेंडे से सहमत हो; उसे बस इतना चाहिए कि कांग्रेस उसके द्वारा तय किए गए विषयों पर प्रतिक्रिया देना शुरू कर दे। जैसे ही ऐसा होता है, भाजपा आधी लड़ाई जीत लेती है। यह उन कई तरीकों में से एक है जिनसे कांग्रेस ने राष्ट्रवाद का एक बड़ा प्रतीकात्मक मैदान भाजपा के लिए खाली छोड़ दिया है। कांग्रेस एक सरल संदेश दे सकती थी—वह इस गीत को

अपना मान सकती थी और यह संकेत दे सकती थी कि वह देशभक्ति को पदों (स्टैंजा) के आधार पर नहीं तौलती।

1937 का संदर्भ और आज की हकीकत

1937 में कांग्रेस कार्य समिति (सीडब्ल्यूसी) द्वारा केवल पहले दो पदों को गाने के निर्णय के पीछे एक स्पष्ट ऐतिहासिक संदर्भ था। उस समय पार्टी को लगा था कि बाद के पदों में ऐसी धार्मिक शब्दावली और बिम्ब (इमेजरी) हैं, जिनसे अन्य धार्मिक समूहों को असुविधा हो सकती है। अतः राष्ट्रीय सम्मेलनों में केवल प्रथम दो पदों के गायन की परंपरा शुरू हुई।

लेकिन लगभग एक सदी बीत जाने के बाद, क्या आज भी यह धर्मनिरपेक्षता (सेकुलरिज्म) की परीक्षा होनी चाहिए?

क्या किसी ऐसे काव्य का गान, जिसमें एक हिंदू देवी का उल्लेख हो, एक नागरिक को कम धर्मनिरपेक्ष बना देता है? आखिर जिस देश को हम 'भारत माता' कहते हैं, वहां मां दुर्गा का आह्वान धार्मिक निष्ठा का कार्य कैसे बन गया? एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य में किसी को भी—चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम—कोई भी गीत गाने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन यह कहना कि इस गीत को पूरा गाना किसी को धर्मनिरपेक्ष परंपरा से बाहर कर देता है, एक बिल्कुल अलग और कमजोर तर्क है।

यह वैचारिक पहरेदारी (गेटकीपिंग) एक तरह से भारतीय मुसलमानों के प्रति भी अपमानजनक है, क्योंकि यह मान लेती है कि वे इतने कमजोर हैं कि

राष्ट्रगीत में एक हिंदू देवी का जिक्र मात्र उन्हें अलग-थलग महसूस कराएगा। यह धर्मनिरपेक्षता के हमारे संस्करण को इतना डरपोक बना देता है कि वह अपनी समावेशिता साबित करने के लिए अपनी ही सांस्कृतिक विरासत के अंगों को काटने की मांग करने लगता है। कांग्रेस को यह समझना होगा कि वह भाजपा और हिंदू दक्षिणपंथ को 'सेकुलर लेबल' चिपकाने की बेचैनी से नहीं हरा सकती; वह केवल भारतीय संस्कृति पर अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके ही जीत सकती है।

बंकिम चंद्र: अपने समय के आधुनिक रचनाकार

इतिहास के हर महान व्यक्तित्व की तरह, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय भी अपने समय की उपज थे। उनके अपने कई



सिद्धांत थे, जो शायद आज उन लोगों को भी रास न आए जो खुद को इस गीत के सबसे बड़े रक्षक मानते हैं। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंदमठ', जिससे 'वंदे मातरम' लिया गया है, उस तरह समाप्त नहीं होता जैसा कई श्राष्ट्रवादी विश्वास करना चाहते हैं। उपन्यास के अंत में अंग्रेजी शासन को एक 'दैवीय व्यवस्था' के रूप में देखा गया है।

बंकिम के अनुवादक आलो शोम के अनुसार, बंकिम चंद्र ने आनंदमठ पर एक पाठक के विचार को श्रुद्धिमानपूर्ण आकलन के रूप में स्वीकार किया था, जिसमें कहा गया था कि अंग्रेज भौतिक विज्ञान के प्रकांड पंडित हैं और वे अच्छे शिक्षक भी हैं, इसलिए उन्हें राजा बनने दें। अंग्रेजी शिक्षा हमें भौतिक ज्ञान देगी जिससे हम अपनी आंतरिक प्रकृति की समस्याओं को हल कर सकेंगे। क्या इससे बंकिम 'राष्ट्रविरोधी' हो जाते हैं? नहीं, वे केवल उस समय की संस्कृति की भावनाओं को प्रतिबिंबित कर रहे थे, जो मानती थी कि बंगाल में ब्रिटिश सरकार एक 'अनिवार्य बुराई' है।

राष्ट्र का देवीकरण: एक आधुनिक परिकल्पना

अब सवाल आता है बाद के पदों के रूढ़िदूकरण का। यहाँ हमें यह समझना होगा कि बंकिम को देश को एक 'मां' और फिर 'देवी' के रूप में बदलने की आवश्यकता क्यों पड़ी।

बंकिम चंद्र ने राष्ट्र के आधुनिक विचार को पश्चिम से समझा था और फिर उस विचार को एक भारतीय (और स्वाभाविक रूप से हिंदू) सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया। राष्ट्र उनके लिए केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं रहा, बल्कि वह एक मां बन गया और उसकी जमीन एक शरीर। मां के सामने नागरिक एक 'बच्चा' बन जाता है, जिससे एक गहरा भावनात्मक संबंध स्थापित होता है।

जैसा कि मीनाक्षी मुखर्जी ने अपने एक निबंध में उल्लेख किया है: 'यह पहली बार था जब शक्ति की हिंदू अवधारणा को एक राजनीतिक इकाई के रूप में देश के विचार के साथ जोड़ा गया था, और इस संलयन (फ्यूजन) की प्रतीकात्मक शक्ति बहुत दूरगामी थी।' यूरोपीय राजनीतिक सोच ने जिस राष्ट्र को क्षेत्र, नागरिकता और संप्रभुता के रूप में परिभाषित किया था, उसे बंकिम ने एक ऐसी मां बना दिया जिसकी पूजा की जा सकती थी और जिसके लिए प्राण न्योछावर किए जा सकते थे। 'वंदे मातरम' की प्रतिभा इसी रूपांतरण में निहित है।

आनंदमठ में सन्यासियों को अपने घर-परिवार के प्रति साधारण लगाव को छोड़कर इस 'बड़ी मां' (राष्ट्र) के प्रति लगाव रखने को कहा गया है। राष्ट्र यहाँ केवल भूगोल नहीं, बल्कि कुछ 'पवित्र' बन जाता है। इसीलिए प्रथम दो पदों को बाद के पदों से अलग करके विवाद सुलझाने की कोशिश करना बौद्धिक रूप से व्यर्थ है, क्योंकि राष्ट्र को पवित्र बनाने की यह प्रक्रिया पूरे गीत की संरचना में रची-बसी है।

एक आधुनिक उत्पाद और प्रतीकात्मक युद्ध

यह एक विडंबना है कि जिस गीत को आज हिंदू राष्ट्रवाद का बोझ ढोने के लिए मजबूर किया जा रहा है, वह असल में आधुनिकता का उत्पाद है। इसे 19वीं सदी के एक लेखक के राष्ट्रीय चेतना के निर्माण के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए। वामपंथी और उदारवादी प्रतिक्रिया अक्सर इस बात तक सीमित रह जाती है कि बाद के पद हिंदू हैं और इसलिए सार्वजनिक उपयोग के लिए अनुपयुक्त हैं। यह तर्क संवैधानिक सिद्धांतों के प्रति निष्ठा रखने वालों को आकर्षित कर सकता है, लेकिन यह गीत के वास्तविक इतिहास

को अनछुआ छोड़ देता है। यह गीत के प्रतीकात्मक धरातल को बिना किसी संघर्ष के दक्षिणपंथ के हवाले कर देता है।

कांग्रेस ने बार-बार स्वयं को गलत मोर्चों पर धकेलने की अनुमति दी है। एक 19वीं सदी के लेखक ने मातृभूमि के विचार को इस रूप में क्यों गढ़ा, इसके पीछे के तर्क तलाशने के बजाय, पार्टी एक राष्ट्रगीत को बीच में ही रोकने की मूर्खतापूर्ण बहस में उलझ जाती है।

यह गीत स्वतंत्रता सेनानियों और क्रांतिकारियों की पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। कांग्रेस केवल दक्षिणपंथ की उस मांग पर प्रतिक्रिया देती है कि देशभक्ति को कर्मकांड (रिचुअल) के माध्यम से प्रदर्शित किया जाए। यह कहने के बजाय कि हमारा राष्ट्र इतना विशाल है कि वह एक पुराने गीत पर असहमति को समाहित कर सकता है, पार्टी उस असहमति को ही देशभक्ति पर एक जनमत संग्रह बनने देती है।

वफादारी की परीक्षा बनाम राष्ट्रीय कल्पना

भाजपा इस तर्क को बहस शुरू होने से पहले ही जीत लेती है क्योंकि वह यह तय करने का अधिकार पा लेती है कि बहस किस बारे में होगी। इस दुर्भाग्यपूर्ण कसरत के माध्यम से, 'वंदे मातरम' को राष्ट्रवादी कल्पना के एक आकर्षक और विरोधाभासी कार्य के बजाय एक 'वफादारी की परीक्षा' (लॉयल्टी टेस्ट) में बदल दिया गया है।

कांग्रेस को यह समझना होगा कि प्रतीकों की इस लड़ाई में वह केवल तभी टिक पाएगी जब वह अपनी विरासत पर गर्व करना सीखेगी और उसे किसी खास चश्मे से देखने के बजाय उसकी समग्रता में स्वीकार करेगी। राष्ट्रगीत को पदों में बांटना असल में राष्ट्र की कल्पना को ही सीमित करना है।

'हंगोर' की वापसी !



संदीप कुमार

पचपन वर्ष पहले 'हंगोर' ने भारतीय नौसेना को गहरा घाव दिया था। आज वही नाम अत्याधुनिक पनडुब्बियों के रूप में फिर सामने है। सवाल केवल पाकिस्तान की बढ़ती ताकत का नहीं, बल्कि भारत की रणनीतिक सुस्ती और समुद्री सुरक्षा के भविष्य का भी है।

दिसंबर 1971 की वह सर्द रात भारतीय नौसेना के इतिहास में एक गहरे जख्म की तरह दर्ज है। गुजरात के तट से दूर, अरब सागर की लहरों के नीचे छिपी एक पाकिस्तानी पनडुब्बी 'पीएनएस हंगोर' ने भारतीय युद्धपोत 'आईएनएस खुकरी' पर घातक हमला किया था। चंद मिनटों में वह फ्रिगेट 18 अधिकारियों और 176 नाविकों के साथ समुद्र की अथाह गहराइयों में समा गया। यह स्वतंत्र भारत के इतिहास का एकमात्र युद्धपोत है जिसे हमने दुश्मन के हमले में खोया। आज, साढ़े पांच दशकों के बाद 'हंगोर' नाम एक बार फिर भारतीय नौसेना के गलियारों में गूंज रहा है। लेकिन इस बार यह कोई पुरानी डीजल पनडुब्बी नहीं है, बल्कि चीन के सहयोग से निर्मित उन अत्याधुनिक पनडुब्बियों की पूरी खेप है, जिसे पाकिस्तान उस रफ्तार से अपनी सेना में शामिल कर रहा है जिसे भारत दशकों से हासिल नहीं कर पाया है।

'कल्ट करंट' के इस विशेष विश्लेषण में हम केवल रक्षा सौदों की संख्या पर बात नहीं करेंगे, बल्कि उस रणनीतिक सुस्ती और नौकरशाही के मकड़जाल की पड़ताल करेंगे जिसने हिंद महासागर के संतुलन को खतरे में डाल दिया है। भारत अब जाकर 'प्रोजेक्ट-75 इंडिया' (पी-75आई) के करीब पहुंच रहा है, जो छह पनडुब्बियों के निर्माण का एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। विडंबना देखिए कि इस परियोजना ने समुद्र में बिताए जाने वाले समय से कहीं अधिक वक्त फाइलों और वार्ताओं की मेजों पर गुजारा है।



पाकिस्तान की नई छलांग: चीन का हाथ और एआईपी की ताकत

30 अप्रैल 2026 को चीन के सान्या में एक भव्य समारोह हुआ। पाकिस्तान के राष्ट्रपति आसिफ अली जरदारी की मौजूदगी में 'पीएनएस हंगोर' को पाकिस्तानी नौसेना में शामिल किया गया। यह एक नए युग की शुरुआत थी। यह पनडुब्बी स्वतंत्र वायु प्रणोदन (एआईपी) प्रणाली से लैस है। साधारण शब्दों में कहें तो यह तकनीक पनडुब्बी को हफ्तों तक पानी के भीतर रहने की शक्ति देती है क्योंकि उसे अपनी बैटरी रिचार्ज करने के लिए सतह पर आने या ऑक्सीजन के लिए स्नॉर्कलिंग करने की जरूरत नहीं पड़ती।

पाकिस्तान केवल एक पनडुब्बी पर नहीं रुक रहा है। वुहान के कारखाने में तीन और पनडुब्बियां— शुशुक, मंगरो और गाजी— पहले ही तैयार हो चुकी हैं। 2015 में हुए 5 अरब डॉलर के इस समझौते के तहत चार और पनडुब्बियां कराची में असेंबल की जाएंगी। 2028 तक पाकिस्तान के पास आठ ऐसी पनडुब्बियां होंगी जो एआईपी तकनीक से लैस होंगी। यह संख्या भारत की मौजूदा क्षमता को पीछे छोड़ने के लिए काफी है। केवल इतना ही नहीं, कमीशन होने के महज कुछ दिनों बाद पीएनएस हंगोर का मलेशिया के कोटा किनाबालु पहुंचना यह साबित करता है कि पाकिस्तान अब केवल अपने तटों की रक्षा तक सीमित नहीं रहना चाहता। यह उसकी पहुंच और विस्तार का एक स्पष्ट संदेश है।

पूर्वी तट का सवाल: क्या विशाखापत्तनम अब सुरक्षित है?

भारतीय रक्षा विश्लेषकों के बीच एक आम धारणा रही है कि पाकिस्तान की नौसेना केवल पश्चिमी तट यानी अरब सागर तक सीमित है। लेकिन यह धारणा अब आत्मघाती साबित हो

सकती है। पाकिस्तान की 'बाबर-3' मिसाइल, जो पनडुब्बी से छोड़ी जा सकती है और परमाणु हथियार ले जाने में सक्षम है, 450 किलोमीटर की मारक क्षमता रखती है। यदि पाकिस्तान की एक हंगोर श्रेणी की पनडुब्बी कराची से चलकर श्रीलंका के नीचे से होते हुए बंगाल की खाड़ी में प्रवेश करती है, तो वह भारत के पूर्वी तट पर स्थित महत्वपूर्ण ठिकानों, जैसे विशाखापत्तनम, को सीधे निशाने पर ले सकती है।

यद्यपि कुछ विशेषज्ञ तर्क देते हैं कि इतनी दूर तक का सफर तय करना और पकड़े न जाना मुश्किल है, लेकिन युद्ध में क्षमता का होना ही अपने आप में एक बड़ा खतरा है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह के पास या विशाखापत्तनम के प्रवेश द्वारों पर एक पाकिस्तानी पनडुब्बी की मौजूदगी मात्र ही भारतीय नौसेना की पूरी रणनीति को उलझाकर रख सकती है। भारत का एंटी-सबमरीन नेटवर्क कभी भी दो मोर्चों पर इस तरह के खतरे के लिए तैयार नहीं किया गया था।

प्रोजेक्ट-75 इंडिया: देरी की एक दुखद दास्तान

पी-75आई की कहानी भारतीय रक्षा खरीद की विफलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी रूपरेखा 1999 में तय की गई थी। इसके तहत छह पनडुब्बियों का निर्माण होना था जो स्वदेशी तकनीक पर आधारित हों। लेकिन इस पर वास्तविक काम जुलाई 2021 में शुरू हुआ जब प्रस्ताव के लिए अनुरोध जारी किया गया। रूस, फ्रांस और स्पेन जैसे देश तकनीक हस्तांतरण की कठोर शर्तों के कारण इस दौड़ से बाहर हो गए। अंततः जर्मनी की कंपनी थिसेनक्रुप मरीन सिस्टम्स और भारत के मझगांव डॉक शिपबिल्डर्स लिमिटेड की जोड़ी एकमात्र दावेदार के रूप में उभरी।

इस साल के शुरू में ही करीब 70,000 से 90,000 करोड़ रुपये के इस सौदे पर बातचीत पूरी हुई है। जर्मनी के चांसलर की भारत यात्रा के दौरान एक अंतर-सरकारी समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। लेकिन सवाल वही है— जो काम 1998 में शुरू होना चाहिए था, उसके लिए 2026 तक इंतजार क्यों करना पड़ा? पहली पनडुब्बी 2030 के दशक से पहले सेवा में नहीं आएगी। तब तक पाकिस्तान की नई पनडुब्बियां समुद्र में अपना प्रभुत्व जमा चुकी होंगी।

रणनीतिक संतुलन और ऊर्जा सुरक्षा का संकट

भारत के पास फिलहाल 19 पनडुब्बियां हैं, जिनमें तीन परमाणु संचालित हैं। यदि पी-75आई समय पर पूरा होता है, तो यह न केवल संख्या बढ़ाएगा बल्कि पुरानी होती 'सिंधुघोष' और 'शिशुमार' श्रेणी की पनडुब्बियों की जगह लेगा जो अपनी उम्र पूरी कर चुकी हैं। 2025 के पहलगाम आतंकी हमले के बाद चलाए गए 'ऑपरेशन सिंदूर' ने यह दिखा दिया था कि पनडुब्बियां कितनी महत्वपूर्ण हैं। तब भारतीय पनडुब्बियों ने पाकिस्तानी नौसेना को कराची बंदरगाह के भीतर ही कैद रहने पर मजबूर कर दिया था। लेकिन क्या हम हर बार अपनी पुरानी पनडुब्बियों से यह उम्मीद कर सकते हैं?

हिंद महासागर में चीन की बढ़ती मौजूदगी एक और बड़ी चिंता है। चीन की पनडुब्बियां अब केवल सैद्धांतिक खतरा नहीं हैं, वे हकीकत हैं। भारत शायद संख्या के मामले में चीन की बराबरी न कर पाए, लेकिन पी-75आई के जरिए वह अपने घरेलू पानी में अपनी भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाकर एक मजबूत घेराबंदी कर सकता है। भारत की 88 प्रतिशत ऊर्जा जरूरतें समुद्र के रास्ते पूरी होती हैं। ऐसे में समुद्री रास्तों की सुरक्षा का अर्थ केवल सैन्य शक्ति

आत्मनिर्भरता: सिर्फ एक नारा या वास्तविकता?



पी-75आई अनुबंध की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी 'रणनीतिक साझेदारी' मॉडल है। इसके तहत पहली पनडुब्बी में 45 प्रतिशत स्वदेशी सामग्री होगी, जो छठी पनडुब्बी तक बढ़कर 60 प्रतिशत हो जाएगी। जर्मनी की कंपनी को न केवल निर्माण बल्कि डिजाइन की बारीकियां भी भारत को सौंपनी होंगी। यह पिछली गलतियों को सुधारने का एक मौका है, क्योंकि स्कॉर्पीन कार्यक्रम में हम केवल असेंबली करना सीख पाए थे, डिजाइन करना नहीं।

पनडुब्बी निर्माण का बुनियादी ढांचा बनाने का लाभ केवल पारंपरिक पनडुब्बियों तक सीमित नहीं है। परमाणु पनडुब्बियों और पारंपरिक पनडुब्बियों के हाइड्रोलिक्स, अग्नि नियंत्रण प्रणाली और पतवार सामग्री में 60 से 70 प्रतिशत समानता होती है। इसलिए पी-75आई की सफलता भारत के अगले बड़े लक्ष्य 'प्रोजेक्ट-76' के लिए जमीन तैयार करेगी, जिसके तहत भारत पूरी तरह से स्वदेशी पनडुब्बियां डिजाइन करना चाहता है।

नहीं, बल्कि देश की आर्थिक जीवन रेखा को बचाए रखना है।

औद्योगिक प्रभाव.: मझगांव डॉक से बोकारो तक

पनडुब्बी निर्माण का असर केवल मुंबई के बंदरगाहों तक सीमित नहीं रहता। स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया ने दो दशकों की मेहनत के बाद विशेष प्रकार का स्टील विकसित किया है जो समुद्र के खारे पानी और अत्यधिक दबाव को झेल सके। बोकारो और राउरकेला के संयंत्रों से निकलने वाला यह लोहा अब पनडुब्बियों की देह बनेगा। इसी तरह एक्साइड इंडस्ट्रीज ने स्वदेशी बैटरियां तैयार की हैं जो पनडुब्बी के कठिन वातावरण में काम कर सकें।

भारत इलेक्ट्रॉनिक्स और कई निजी रक्षा कंपनियां भी सोनार सिस्टम और युद्ध प्रबंधन प्रणाली विकसित कर रही हैं। सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उन छोटे और मध्यम उद्योगों की है जो सूक्ष्म पुर्जे

और precision कंपोनेंट्स की आपूर्ति करते हैं। मझगांव डॉक के साथ जुड़े करीब 200 से अधिक ऐसे लघु उद्योग इस विशाल परियोजना के कारण अगले एक दशक तक फल-फूल सकेंगे। यह केवल एक रक्षा सौदा नहीं, बल्कि भारत के औद्योगिक पारिस्थितिकी तंत्र के लिए एक ऑक्सीजन की तरह है।

वक्त हाथ से निकल रहा है

दक्षिण ब्लॉक के नीति निर्धारकों के लिए अब आत्ममुग्धता का समय नहीं है। हकीकत यह है कि जब भारत की पहली पी-75आई पनडुब्बी पानी में उतरेगी, तब तक पाकिस्तान के पास आठ अत्याधुनिक एआईपी पनडुब्बियां सक्रिय होंगी। चीन की पनडुब्बियों की संख्या तब तक और अधिक बढ़ चुकी होगी। हम निर्माण की घड़ी को पीछे नहीं मोड़ सकते, लेकिन हम उसे और धीमा होने से जरूर रोक सकते हैं।

भारत की पनडुब्बी शक्ति का इतिहास केवल निर्माण की क्षमता का

नहीं रहा है। हमने 'अरिहंत' जैसी परमाणु पनडुब्बी बनाकर यह साबित किया है कि अगर राजनीतिक इच्छाशक्ति हो, तो हम कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन क्या वह इच्छाशक्ति एक निरंतर सांगठनिक आदत बन पाएगी?

प्रोजेक्ट-75 इंडिया अकेले उस खाई को नहीं भर पाएगा जो पाकिस्तान और चीन ने पैदा की है। लेकिन अगर इस पर तुरंत हस्ताक्षर किए जाएं, इसे समय पर बनाया जाए और इसे एक स्वतंत्र पनडुब्बी उद्योग की शुरुआत माना जाए, तो हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि भविष्य में जब भी भारतीय नौसेना के इतिहास में 'हंगोर' जैसे नाम का जिक्र हो, तो सन्नाटे का लाभ भारत के पास हो, न कि उसके शत्रुओं के पास। समुद्र की गहराइयों में जो चुप रहता है, वही विजेता होता है। अब यह भारत को तय करना है कि वह इस खामोश युद्ध में शिकारी बनेगा या शिकार।

सितंबर 2026 की दहलीज पर खड़ी दुनिया एक अजीब विरोधाभास से गुजर रही है। एक ओर युद्ध की लपटें और व्यापारिक दीवारें वैश्विक अर्थव्यवस्था की रफ्तार रोक रही हैं, तो दूसरी ओर भारत अपनी 7.8 प्रतिशत की विकास दर के



श्रीराजेश

संकट में दुनिया, संभलता भारत

तेल का जोखिम
महंगे तेल की मार
कितनी गहरी?



टैरिफ और
व्यापार युद्ध
भारतीय निर्यात पर
कितना असर?



रुपया, विदेशी पूंजी
और बाहरी मोर्चा
मजबूत भंडार, फिर भी
रुपये पर दबाव क्यों?

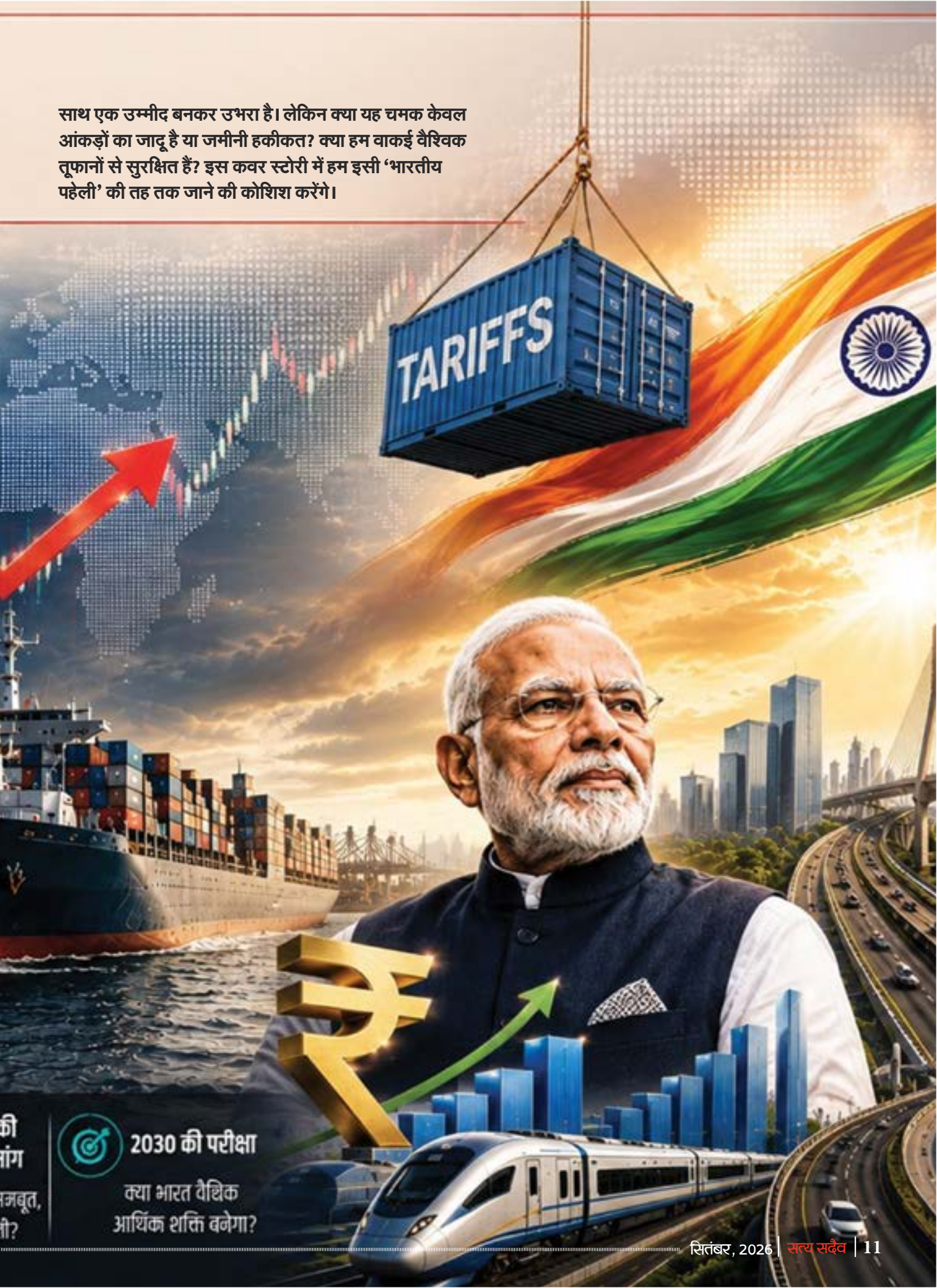


क्या निवेश
सहज लौट आया?
निजी निवेश के संकेत
कितने मजबूत?



भारत में
घरेलू म
उपभोक्ता कितना म
कितनी है हुनौत

साथ एक उम्मीद बनकर उभरा है। लेकिन क्या यह चमक केवल आंकड़ों का जादू है या जमीनी हकीकत? क्या हम वाकई वैश्विक तूफानों से सुरक्षित हैं? इस कवर स्टोरी में हम इसी 'भारतीय पहेली' की तह तक जाने की कोशिश करेंगे।



की
गांग
मजबूत,
भी?



2030 की परीक्षा

क्या भारत वैश्विक
आर्थिक शक्ति बनेगा?

दुनिया के आर्थिक नक्शे पर आज जो हलचल और उथल-पुथल दिखाई दे रही है, वैसी शायद पिछले 50 वर्षों के इतिहास में कभी नहीं देखी गई। हम एक ऐसे दौर में जी रहे हैं जहां पुराने नियम टूट रहे हैं और नए नियमों का अभी जन्म होना बाकी है। दशकों तक वैश्वीकरण को विकास का एकमात्र और अचूक मंत्र माना जाता था। यह माना जाता था कि दुनिया एक 'ग्लोबल विलेज' है जहां व्यापार की राह में कोई दीवार नहीं होगी। लेकिन आज वही वैश्वीकरण गहरे सवालियों के घेरे में है। दुनिया के बड़े देश अब अपनी सीमाओं को व्यापार के लिए खोलने के बजाय, उन्हें सुरक्षित करने में लगे हैं। 'मुक्त व्यापार' की जगह अब 'सुरक्षित व्यापार' ने ले ली है।

आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखें तो पश्चिम एशिया का संघर्ष अब केवल एक क्षेत्रीय विवाद या जमीन का टुकड़ा हासिल करने की लड़ाई नहीं रह गया है। यह एक ऐसा ज्वालामुखी है जिसकी लपटें पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था को झुलसा रही हैं। पश्चिम एशिया से निकलने वाले तेल और गैस की सप्लाई चेन में आने वाला जरा सा भी अवरोध वैश्विक अर्थव्यवस्था की धमनियों में उस दर्द की तरह महसूस किया जाता है, जिससे विकसित से लेकर विकासशील देश तक कराह उठते हैं। लाल सागर में बढ़ते तनाव और जहाजों पर होते हमलों ने समुद्री व्यापार के रास्तों को असुरक्षित और महंगा बना दिया है। जब माल ले जाने वाले जहाज लंबे रास्ते अपनाते हैं, तो केवल ईंधन नहीं जलता, बल्कि आम आदमी की जेब भी जलती है क्योंकि हर चीज की लागत बढ़ जाती है। लागत का यह इजाफा अंततः महंगाई के रूप में हमारी थाली तक पहुंचता है।

दूसरी ओर, दुनिया की दो सबसे बड़ी महाशक्तियों—अमेरिका और चीन—के बीच की रणनीतिक प्रतिद्वंद्विता ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को एक नए 'शीत युद्ध' की ओर धकेल दिया है। यह लड़ाई अब केवल सीमाओं या कूटनीति की नहीं, बल्कि 'चिप', 'डेटा' और 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' की है। इस होड़ ने दुनिया को दो स्पष्ट गुटों में नहीं, बल्कि दर्जनों छोटे-छोटे व्यापारिक टुकड़ों में बांट दिया है। आपूर्ति श्रृंखलाएं, जो कभी केवल 'दक्षता' और 'कम लागत' के सिद्धांतों पर टिकी थीं, अब 'भरोसे' और 'सुरक्षा' की कसौटी पर परखी जा रही हैं। कंपनियां अब अपना सामान वहां नहीं बनाना चाहतीं जहां वह सबसे सस्ता हो, बल्कि वहां बनाना चाहती हैं जहां उनका निवेश सुरक्षित हो। दुनिया अब 'फ्रेंड-शोरिंग' की ओर बढ़ रही है, यानी व्यापार केवल दोस्तों के साथ।

इसी अस्थिर, अशांत और अनिश्चित वैश्विक परिदृश्य

के बीच, भारत की आर्थिक विकास दर अंधेरे में एक जलते हुए दीये की तरह दिखाई देती है। जब दुनिया की बड़ी-बड़ी अर्थव्यवस्थाएं 1 या 2 प्रतिशत की वृद्धि के लिए संघर्ष कर रही हैं, तब अप्रैल-जून 2026 की पहली तिमाही में भारतीय अर्थव्यवस्था ने 7.8 प्रतिशत की शानदार छलांग लगाकर सबको चौंका दिया है। यह आंकड़ा केवल एक नंबर नहीं है; यह भारतीय अर्थव्यवस्था की उस जीवंतता का प्रमाण है जिसे अंतरराष्ट्रीय एजेंसियां भी सलाम कर रही हैं। गौर करने वाली बात यह है कि यह वृद्धि भारतीय रिजर्व बैंक के 7 प्रतिशत के शुरुआती अनुमान से भी कहीं अधिक है। इसका सीधा मतलब यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था उम्मीदों से कहीं अधिक तेज रफ्तार से दौड़ रही है।

विनिर्माण और सेवा क्षेत्र ने जिस तरह से गति पकड़ी है, वह इस बात का ठोस संकेत है कि भारत के भीतर कुछ बड़ा और सकारात्मक घट रहा है। अगस्त 2026 में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का संग्रह करीब 2 लाख करोड़ रुपये के जादुई आंकड़े तक जा पहुंचना कोई सामान्य घटना नहीं है। यह पिछले साल के इसी महीने की तुलना में लगभग



सत्य सदैव

से जुड़ें

विचारों का सच्चा संगम

सत्य सदैव वह मंच है जहां विविध दृष्टिकोण, अनुभव और विचार एक साथ मिलते हैं। यह उन जिज्ञासु और जागरूक पाठकों का मंच है जो अपने समय के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों को गहराई से समझना चाहते हैं। हमारा प्रयास केवल समाचार देना नहीं, बल्कि विचारों का ऐसा संवाद स्थापित करना है जहां मतभेद के बावजूद सार्थक चर्चा हो सके। सत्य सदैव अपने पाठकों को एक ऐसा बौद्धिक मंच प्रदान करता है जहां खुली सोच, तर्कपूर्ण विमर्श और परस्पर सम्मान के साथ हम अपने समाज और दुनिया को समझने की दिशा में आगे बढ़ते हैं।

सत्य सदैव को सब्सक्राइब करें

और बनें उस समुदाय का हिस्सा जो सत्य, संवाद और विचार की शक्ति में विश्वास रखता है।

केवल
₹20
प्रति अंक



अभी ऑर्डर करें: satyasadev.com

satyasadev.com
का असीमित एक्सेस

विज्ञापन-मुक्त साइट
ब्राउज़ करें

विभिन्न सोशल मीडिया
प्लेटफार्म्स पर उपलब्ध

शीघ्र ही YouTube पर
भी होगी हमारी मौजूदगी

सब्सक्रिप्शन का वार्षिक ₹300। यह ऑफर केवल नए सब्सक्राइबर्स के लिए है।

14.8 प्रतिशत अधिक है। यह रिकॉर्ड संग्रह यह बताता है कि वैश्विक अनिश्चितता के बावजूद भारतीय उपभोक्ता की खरीदारी की ताकत और उसका उत्साह कम नहीं हुआ है। सिनेमाघरों से लेकर ऑटोमोबाइल शोरूम तक और पर्यटन स्थलों से लेकर ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म तक, हर जगह हलचल है। भारतीय उपभोक्ता अब भी बाजार में सक्रिय है और यही हमारी विकास यात्रा का सबसे बड़ा इंजन है।

लेकिन क्या यह चमकती हुई तस्वीर इतनी ही सरल और बेदाग है? यहीं कहानी में एक बारीक पेच आता है, जिसे समझना हर पाठक के लिए जरूरी है। एक तरफ जहां हम 7.8 प्रतिशत की विकास दर का जश्न मना रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ विनिर्माण क्षेत्र के स्वास्थ्य को मापने वाला पैमाना यानी पीएमआई (परचेजिंग मैनेजर्स इंडेक्स) अगस्त में गिरकर 52.8 पर आ गया है। यह आंकड़ा पिछले 5 वर्षों का सबसे कमजोर स्तर है। सरल शब्दों में कहें तो पीएमआई का गिरना इस बात की चेतावनी है कि हमारे कारखानों में नए ऑर्डर आने की रफ्तार धीमी पड़ रही है और उत्पादन का पहिया उतना तेज नहीं घूम रहा जितना कुछ महीने पहले था। यह संकेत है कि औद्योगिक उत्पादन में कहीं न कहीं थकान महसूस की जा रही है।

अब यहां एक बड़ा अंतर्विरोध खड़ा होता है: यदि कारखानों में उत्पादन की रफ्तार धीमी है, तो 7.8 प्रतिशत की विकास दर आ कहां से रही है? इस पहली का जवाब सेवा क्षेत्र की अद्भुत मजबूती और बुनियादी ढांचे पर सरकार के भारी-भरकम खर्च में छिपा है। भारत का सेवा क्षेत्र, जिसमें आईटी, बैंकिंग, पर्यटन और पेशेवर परामर्श सेवाएं शामिल हैं, आज भी वैश्विक स्तर पर अपनी धाक जमाए हुए है। वित्तीय और रियल एस्टेट सेवाओं में तो 12.1 प्रतिशत की शानदार वृद्धि देखी गई है। साथ ही, सरकार ने सड़कों, रेलवे लाइनों, हवाई अड्डों और बंदरगाहों के निर्माण पर जो पैसा खर्च किया है, उसने मांग को कृत्रिम रूप से सहारा दिया है। लेकिन सवाल यह है कि क्या केवल सरकारी खर्च और सेवाओं के दम पर हम लंबे समय तक 7.8 प्रतिशत की रफ्तार बनाए रख सकते हैं? क्या हमारे कारखानों को फिर से वही पुरानी रफ्तार नहीं पकड़नी होगी?

वित्तीय मजबूती के मोर्चे पर देखें तो भारत का विदेशी मुद्रा भंडार 729.33 अरब डॉलर के अब तक के सबसे ऊंचे रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया है। यह एक ऐसा अभेद्य सुरक्षा कवच है जो हमें किसी भी वैश्विक वित्तीय झटके से बचाने की क्षमता रखता है। यदि अंतरराष्ट्रीय बाजार में डॉलर की कीमत बढ़ती है या वैश्विक निवेशक अचानक अपना पैसा निकालने लगते हैं, तो यह भंडार हमें डूबने से बचाएगा। यह



हमारे देश की आर्थिक 'फायरपावर' है। लेकिन हमें इस सिक्के के दूसरे पहलू को भी गौर से देखना होगा। विदेशी मुद्रा भंडार का बढ़ना केवल हमारी निर्यात ताकत का परिणाम नहीं है। इसमें उस विदेशी पूंजी (एफपीआई) का भी बड़ा हाथ है जो भारतीय शेयर बाजार की चमक देखकर यहां आई है। इसे अर्थशास्त्र की भाषा में 'हॉट मनी' कहा जा सकता है, जो पलक झपकते ही अपना रास्ता बदल सकती है। साथ ही, रिजर्व बैंक के सक्रिय हस्तक्षेप ने भी इस भंडार को सहेजने में बड़ी भूमिका निभाई है। अर्थात्, हमारी मजबूती के पीछे कहीं न कहीं विदेशी पूंजी का वो प्रवाह भी है जो वैश्विक राजनीति और ब्याज दरों के मिजाज के साथ कभी भी पलट सकता है।

यही वह समय है जब हमें केवल जीडीपी की चमक और हेडलाइंस से आगे बढ़कर यह पूछना चाहिए कि क्या यह विकास वाकई समावेशी है? क्या इस 7.8 प्रतिशत का



है और यदि वहां की आय नहीं बढ़ती, तो हमारी विकास दर का इंजन एकतरफा होकर रह जाएगा। भारत की असली आर्थिक परीक्षा शहरों के चमचमाते मॉल में नहीं, बल्कि उन गांवों की गलियों में है जहां देश की 70 प्रतिशत आबादी बसती है। विकास का असली मतलब तब है जब वह मॉल की लिफ्ट से उतरकर गांव की धूल भरी पगडंडी तक पहुंचे।

अतः, निष्कर्ष यही है कि भारत आज एक 'मजबूत विरोधाभास' के बीच खड़ा है। हम वैश्विक संकटों के बीच सबसे तेज बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था तो हैं, लेकिन हमारी इस मजबूती की जड़ें अभी उतनी गहरी नहीं हुई हैं कि हम पूरी तरह निश्चित हो सकें। हम एक ऐसी नौका में सवार हैं जिसने तूफान के बीच अपना संतुलन तो बना रखा है, लेकिन समुद्र की लहरें अभी शांत नहीं हुई हैं। यह विकास दर एक चमत्कार तो है, लेकिन इस चमत्कार को एक स्थायी हकीकत में बदलना ही 2030 के भारत का असली संकल्प होना चाहिए। असली सवाल रफ्तार का नहीं, बल्कि ट्रांसफॉर्मेशन का है।

तेल की आंच और व्यापारिक कूटनीति की बिसात

भारत की आर्थिक महागाथा में एक ऐसा अध्याय है जो अत्यंत संवेदनशील है और विडंबना यह है कि इस अध्याय की पटकथा भारत की सीमाओं के भीतर नहीं, बल्कि दूर-दराज के रेतीले मरुस्थलों और अशांत समुद्री रास्तों में लिखी जाती है। हम बात कर रहे हैं कच्चे तेल की। तेल—यह शब्द भारत के लिए केवल एक औद्योगिक ईंधन या वाहन चलाने का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह हमारी एक गहरी रणनीतिक मजबूरी है। दुनिया चाहे तेज विकास की ओर बढ़े या मंदी की गहरी खाई की ओर, अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें भारत के आर्थिक भाग्य का फैसला करती हैं। इसकी वजह बहुत साफ और चिंताजनक है: भारत अपनी जरूरत का 90 प्रतिशत से भी ज्यादा कच्चा तेल विदेशों से आयात करता है। अंतरराष्ट्रीय परामर्श संस्था ईवाई के हालिया आंकड़ों पर गौर करें तो पता चलता है कि वित्त वर्ष 2026 में हमारी तेल पर निर्भरता में कोई कमी नहीं आई है, बल्कि यह और अधिक सघन और चुनौतीपूर्ण हो गई है। इसका सीधा अर्थ यह है कि भारत के विकास की मशीन का असली ईंधन आज भी हमारे अपने नियंत्रण में नहीं है।

जब अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल महंगा होता है, तो उसका असर केवल पेट्रोल पंपों पर दिखने वाले पेट्रोल और डीजल के दामों तक सीमित नहीं रहता। यह पूरी अर्थव्यवस्था में एक भयावह श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया शुरू कर देता है। महंगा तेल मतलब महंगा परिवहन, और महंगा परिवहन मतलब हर उस चीज की कीमत में बढ़ोतरी जो सड़क या रेल के रास्ते आप

लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुंच रहा है? जब हम बाजार का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं, तो एक बड़ी खाई नजर आती है। शहरों में महंगी कारों, पांच सितारा होटलों और प्रीमियम मोबाइल फोन की मांग रिकॉर्ड तोड़ रही है। इसे देखकर लगता है कि भारत बहुत अमीर हो गया है। लेकिन जब हम ग्रामीण भारत की ओर नजर डालते हैं, तो वहां मांग की स्थिति अब भी उतनी उत्साहजनक नहीं है। साबुन, तेल और छोटे बिस्कुट के पैकेट बनाने वाली कंपनियां आज भी ग्रामीण मांग में सुस्ती का सामना कर रही हैं। दोपहिया वाहनों की बिक्री, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था का थर्मामीटर मानी जाती है, अब भी वैसी रफ्तार नहीं पकड़ पाई है जैसी एक दशक पहले थी।

इस तिमाही में कृषि विकास दर 3.6 प्रतिशत रही। हालांकि यह नकारात्मक नहीं है, लेकिन ग्रामीण भारत की आय में किसी बड़े क्रांतिकारी बदलाव के लिए यह पर्याप्त भी नहीं है। भारत का एक बड़ा हिस्सा आज भी खेती पर निर्भर

तक पहुंचती है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती; कच्चे तेल से ही हमारे खेतों के लिए उर्वरक बनते हैं, कीटनाशक बनते हैं और प्लास्टिक से लेकर रसायनों तक की एक विशाल श्रृंखला तैयार होती है। अंततः, तेल की यह आंच महंगाई के रूप में आम आदमी की जेब पर सीधा डाका डालती है। अर्थशास्त्रियों का एक बड़ा वर्ग मानता है कि कच्चे तेल की कीमतों में होने वाली हर 10 डॉलर प्रति बैरल की वृद्धि भारत के चालू खाते के घाटे यानी सीएडी को जी-डी-पी के 0.3 से 0.4 प्रतिशत तक बढ़ा सकती है। हाल ही में जब ब्रेंट क्रूड 95 डॉलर के स्तर को छूने लगा, तो भारतीय शेयर बाजारों में तत्काल हाहाकार मच गया। यह इस बात का जीता-जागता सबूत है कि हमारे विकास की मशीन का असली रिमोट

भारत ने इस बार इस खतरे से निपटने के लिए एक नई और साहसिक रणनीति अपनाई है। हमने अपने तेल स्रोतों का विविधीकरण किया है, यानी हम अब केवल एक भौगोलिक क्षेत्र पर निर्भर नहीं हैं। पिछले कुछ समय में रूस से रियायती दरों पर कच्चे तेल की खरीद ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बहुत बड़ा वित्तीय सहारा दिया है।



कंट्रोल आज भी विदेशी ताकतों और वैश्विक राजनीति के हाथों में कैद है।

यही वह ट्रान्मिशन मैकेनिज्म है जो तेल को महज ऊर्जा का मुद्दा नहीं रहने देता, बल्कि इसे महंगाई, रुपया, व्यापार घाटा और विकास—इन चारों मोर्चों पर एक साथ खड़ा कर देता है। 2026 में यह जोखिम केवल सैद्धांतिक नहीं रहा। पश्चिम एशिया के संघर्ष और होर्मुज जलडमरूमध्य में पैदा हुए व्यवधानों ने वैश्विक तेल आपूर्ति को बड़ा झटका दिया है। अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी यानी आईईए ने अगस्त में अनुमान लगाया था कि वैश्विक तेल आपूर्ति में 4.3 मिलियन बैरल प्रतिदिन की कमी आ सकती है। जब आपूर्ति घटती है और मांग स्थिर रहती है, तो कीमतें बढ़ना अनिवार्य है। भारत के

लिए यह स्थिति दोहरी मार की तरह है। एक तरफ हमें तेल खरीदने के लिए ज्यादा डॉलर खर्च करने पड़ते हैं जिससे रुपए पर दबाव आता है, और दूसरी तरफ घरेलू स्तर पर बढ़ती लागत औद्योगिक उत्पादन की रफ्तार को धीमा कर देती है।

हालांकि, भारत ने इस बार इस खतरे से निपटने के लिए एक नई और साहसिक रणनीति अपनाई है। हमने अपने तेल स्रोतों का विविधीकरण किया है, यानी हम अब केवल एक भौगोलिक क्षेत्र पर निर्भर नहीं हैं। पिछले कुछ समय में रूस से रियायती दरों पर कच्चे तेल की खरीद ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बहुत बड़ा वित्तीय सहारा दिया है। इसने हमें उस समय बचाया जब पश्चिमी एशिया के संकट के कारण तेल की कीमतें आसमान छू रही थीं। लेकिन अब यह विकल्प भी भू-राजनीतिक जोखिमों के घेरे में आ गया है। अगस्त 2026 के आंकड़ों के अनुसार, रूस से होने वाले तेल आयात में अचानक 26 प्रतिशत की बड़ी कमी दर्ज की गई है, जबकि कुल तेल आयात में भी लगभग 8 प्रतिशत की गिरावट आई। इसके पीछे रूसी आपूर्ति की उपलब्धता, चीन की बढ़ी हुई खरीद और भारतीय रिफाइनरियों के रखरखाव जैसे कई कारण रहे। यह घटनाक्रम हमें यह कड़ा सबक याद दिलाता है कि वास्तविक आर्थिक सुरक्षा के लिए हम केवल सस्ते विदेशी तेल पर लंबे समय तक भरोसा नहीं कर सकते। हमें रिन्यूएबल एनर्जी और परमाणु ऊर्जा जैसे विकल्पों पर कहीं अधिक तेजी से निवेश करना होगा।

ऊर्जा के इस संकट के साथ-साथ, व्यापार के मोर्चे पर एक और भीषण युद्ध छिड़ा हुआ है, जिसे हम टैरिफ युद्ध या शुल्क युद्ध कहते हैं। अमेरिका की सेक्शन 301 नीति के तहत भारतीय उत्पादों पर लगाया गया अतिरिक्त शुल्क हमारे निर्यातकों के लिए एक बहुत बड़ी बाधा बनकर खड़ा है। हालांकि फरवरी 2026 में हुए कुछ महत्वपूर्ण समझौतों के तहत अमेरिका ने भारत पर लागू रेसिप्रोकल टैरिफ को 25 प्रतिशत से घटाकर 18 प्रतिशत किया था और रूस से तेल खरीद से जुड़े अतिरिक्त शुल्क को भी हटा दिया था, लेकिन खतरा अभी पूरी तरह टला नहीं है। जुलाई 2026 में अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि कार्यालय ने जबरन श्रम से बने उत्पादों के आरोपों के संदर्भ में भारत से होने वाले कुछ आयातों पर अतिरिक्त 10 प्रतिशत शुल्क लगा दिया। सरकार के अनुसार, भारत के अमेरिका को होने वाले निर्यात का लगभग 45 प्रतिशत हिस्सा अभी भी इन अतिरिक्त शुल्कों के प्रभाव से बाहर है, लेकिन शेष हिस्से पर अनिश्चितता की तलवार लटकी हुई है।

आज का वैश्विक व्यापार युद्ध केवल इस बारे में नहीं है



कि कौन सा देश कितना आयात शुल्क या टैरिफ लगाता है, बल्कि यह इस बारे में है कि दुनिया की बदलती आपूर्ति श्रृंखला में आपकी रणनीतिक जगह कहां है। अमेरिका की रणनीति में टैरिफ अब व्यापार घाटे को कम करने के साथ-साथ औद्योगिक क्षमता और भू-राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करने का माध्यम बन चुके हैं। चीन से वैश्विक कंपनियों का मोहभंग होने के बाद अब पूरी दुनिया चीन+1 की नीति पर चल रही है, यानी वे चीन के विकल्प के रूप में किसी दूसरे भरोसेमंद देश की तलाश में हैं। भारत इस वैश्विक दौड़ में सबसे आगे खड़ा हो सकता है और दुनिया का नया ग्लोबल प्रोडक्शन बेस बन सकता है। लेकिन इस सुनहरे अवसर को हकीकत में बदलने के लिए हमें अपनी लॉजिस्टिक्स की लागत को भारी मात्रा में घटाना होगा। हमारे बंदरगाहों और सड़कों की कार्यक्षमता को वैश्विक स्तर पर लाना होगा और सीमा शुल्क यानी कस्टम्स की जटिल प्रक्रियाओं को इतना सरल बनाना होगा कि विदेशी कंपनियां भारत को अपना स्थायी घर मानने लगे।

भारत के लिए आने वाला समय अवसरों का एक महासागर है, लेकिन सबसे बड़ी चुनौती यह है कि क्या हम इन अवसरों को वास्तविक आर्थिक लाभ में बदल पाएंगे? इलेक्ट्रॉनिक्स, फार्मा और इंजीनियरिंग के क्षेत्रों में भारत एक वैश्विक केंद्र बनने की पूरी क्षमता रखता है। लेकिन इसके लिए हमें केवल टैरिफ की दीवारों के गिरने का इंतजार नहीं करना चाहिए। हमें अपनी उत्पादन गुणवत्ता और उत्पादकता को उस शिखर पर ले जाना होगा जहां दुनिया हमारे सामान को केवल सस्ता होने की वजह से नहीं, बल्कि सर्वश्रेष्ठ और विश्वसनीय होने के कारण खरीदे। यह टैरिफ युद्ध और तेल की अनिश्चितता हमारे लिए एक बड़ा खतरा तो है ही, लेकिन यही परिस्थितियां हमें अपनी आत्मनिर्भरता और रणनीतिक स्वायत्तता को बढ़ाने का एक ऐतिहासिक मौका भी प्रदान कर रही हैं। यदि भारत इस दौर में अपनी ऊर्जा और व्यापार नीतियों को सही दिशा दे पाया, तो 2030 तक हम न केवल एक बड़ा बाजार, बल्कि एक अनिवार्य वैश्विक आर्थिक शक्ति बनकर उभरेंगे।

निवेश का अंतहीन इंतजार और निजी क्षेत्र की दुविधा

अर्थशास्त्र की जटिल शब्दावलियों से इतर, यदि हम किसी भी देश की खुशहाली और भविष्य की प्रगति का सबसे सरल पैमाना तलाशें, तो वह यह है कि वहां का औद्योगिक जगत और आम नागरिक भविष्य को लेकर कितने उत्साहित और आश्वस्त हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए मुख्य रूप से तीन बड़े इंजनों की आवश्यकता होती है: आम जनता की खपत, सरकार द्वारा किया जाने वाला खर्च और निजी क्षेत्र द्वारा किया जाने वाला निवेश। पिछले कुछ वर्षों के

दौरान, भारत की विकास यात्रा का रथ मुख्य रूप से सरकारी खर्च के इंजन पर सवार होकर आगे बढ़ रहा था। सरकार ने सड़कों, रेलवे, नए हवाई अड्डों और डिजिटल बुनियादी ढांचे के निर्माण पर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च किए, जिससे बाजार में मांग बनी रही और अर्थव्यवस्था को सहारा मिला। लेकिन कोई भी बड़ी अर्थव्यवस्था केवल सरकारी खर्च के दम पर बहुत लंबे समय तक नहीं दौड़ सकती। असली मजबूती और स्थायित्व तब आता है जब निजी क्षेत्र यानी प्राइवेट कंपनियां अपनी जेब से पैसा निकालकर नए कारखाने लगाएं, नई मशीनें खरीदें और तकनीक में निवेश करें।



अप्रैल-जून 2026 की तिमाही के ताजा आंकड़े इस मोर्चे पर एक नई उम्मीद जगाते हैं। इस अवधि में सकल स्थिर पूंजी निर्माण, जिसे सरल भाषा में हम भविष्य के लिए किया गया निवेश कह सकते हैं या जिसे जीएफसीएफ भी कहा जाता है, उसमें लगभग 11.9 प्रतिशत की प्रभावशाली बढ़ोतरी देखी गई है। यह पिछले 13 तिमाहियों में सबसे तेज और उत्साहजनक रफ्तार है। इस आंकड़े का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जी-डी-पी में जीएफसीएफ का हिस्सा भी पिछले साल के 31.4 प्रतिशत से बढ़कर अब 34.3 प्रतिशत हो गया है। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण की गति अब धीरे-धीरे अपनी

पुरानी लय वापस पा रही है।

लेकिन यहां एक बारीक और महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि क्या यह 11.9 प्रतिशत की बढ़ोतरी वाकई पूरी तरह से निजी निवेश का परिणाम है? हकीकत यह है कि जीएफसीएफ के आंकड़ों में सरकारी और निजी, दोनों ही क्षेत्रों का निवेश शामिल होता है। हालांकि, भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों पर आधारित हालिया रिपोर्टों से पता चलता है कि सूचीबद्ध कंपनियों की बिक्री में वित्त वर्ष 2027 की पहली तिमाही में 19.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और यह आंकड़ा बढ़कर 21.6 लाख करोड़ रुपये तक जा पहुंचा है। कंपनियों की बैलेंस शीट अब पहले से कहीं ज्यादा साफ-सुथरी और मजबूत हैं, उनके पास निवेश करने की क्षमता भी बढ़ी है और बैंकिंग प्रणाली में ऋण की मांग भी मजबूत बनी हुई है। लेकिन इसके बावजूद, भारतीय कॉर्पोरेट जगत में एक अजीब सी हिचकिचाहट और सावधानी साफ देखी जा सकती है।

कंपनियों के पास निवेश करने की क्षमता तो बढ़ी है, लेकिन निवेश का अंतिम फैसला केवल क्षमता से नहीं, बल्कि भविष्य की मांग के भरोसे से लिया जाता है। आज का भारतीय उद्यमी 'देखो और इंतजार करो' की नीति पर चल रहा है। इसका मुख्य कारण वैश्विक बाजारों में छाई अनिश्चितता और मंदी की आहट है। उन्हें डर है कि यदि वे आज बड़े पैमाने पर उत्पादन क्षमता का विस्तार करते हैं और कल को वैश्विक मंदी के कारण मांग कम हो जाती है, तो उनका निवेश संकट में पड़ सकता है। यही कारण है कि एनएसओ के केपेक्स सर्वे के अनुसार, कंपनियों ने निवेश की योजनाएं तो बनाई हैं, लेकिन उनमें वह आक्रामकता अब भी गायब है जो एक दशक पहले देखी जाती थी। कंपनियां फिलहाल अपनी मौजूदा क्षमताओं का ही पूरा उपयोग करने पर ज्यादा ध्यान दे रही हैं।

निवेश की इस पूरी कहानी में सबसे बड़ी और कठिन परीक्षा रोजगार की है। एक आधुनिक अर्थव्यवस्था में केवल आंकड़े बढ़ जाना ही पर्याप्त नहीं है। आज हम ए-आई, डेटा सेंटर और ऑटोमेटेड फैक्ट्रियों की बात कर रहे हैं, जो जी-डी-पी की रफ्तार को तो सातवें आसमान पर ले जा सकती हैं, लेकिन क्या वे उसी अनुपात में नए और बेहतर रोजगार पैदा कर रही हैं? यहीं भारत की असली चुनौती छिपी है। भारत को हर साल करोड़ों की संख्या में युवाओं को श्रम बाजार में शामिल करना होता है। यदि निवेश केवल ऐसी तकनीकों और उद्योगों में हो रहा है जो पूंजी-प्रधान हैं, तो इससे विकास तो होगा लेकिन वह रोजगारहीन विकास होगा। भारत को आज बड़े पैमाने पर लेबर इंटेन्सिव मैन्युफैक्चरिंग यानी श्रम-प्रधान विनिर्माण की आवश्यकता है। टेक्सटाइल, फुटवियर और फूड प्रोसेसिंग जैसे क्षेत्रों में जब तक निजी



निवेश नहीं बढ़ेगा, तब तक रोजगार का संकट पूरी तरह हल नहीं होगा।

एक और महत्वपूर्ण पहलू भारतीय बाजार के भीतर मौजूद विरोधाभास का है। शहरी और ग्रामीण मांग के बीच की खाई निवेश के फैसलों को गहराई से प्रभावित कर रही है। आज शहरों में महंगी कारों, लग्जरी अपार्टमेंट और प्रीमियम मोबाइल फोन की मांग रिकॉर्ड तोड़ रही है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि भारतीय बाजार पूरी तरह से फल-फूल रहा है। लेकिन दूसरी तरफ ग्रामीण भारत में दोपहिया वाहनों और बुनियादी उपभोक्ता वस्तुओं की मांग अब भी सुस्त है। अर्थशास्त्र की भाषा में इसे के-शेड रिकवरी कहा जाता है, जहां समाज का एक छोटा हिस्सा बहुत तेजी से अमीर हो रहा है, जबकि बड़ा हिस्सा अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए संघर्ष कर रहा है। निवेश को टिकाऊ और सर्वव्यापी बनाने के लिए ग्रामीण आय में बढ़ोतरी होना अनिवार्य है। जब तक ग्रामीण क्षेत्रों से मांग का दबाव नहीं बनेगा, तब तक निजी कंपनियां नए कारखाने लगाने के लिए पूरी तरह से प्रेरित नहीं होंगी।

अंततः, निवेश केवल आंकड़ों का खेल नहीं है, बल्कि यह एक सामूहिक मनोविज्ञान और भरोसे का परिणाम है। सरकार ने पब्लिक केपेक्स के जरिए रास्ता तो तैयार कर दिया है, लेकिन अब प्राइवेट केपेक्स को कमान संभालनी होगी। 7.8 प्रतिशत की जी-डी-पी वृद्धि तभी चमत्कारिक मानी जाएगी जब वह नए कारखानों की चिमनियों से निकलते धुएं और लाखों युवाओं के हाथों में मौजूद रोजगार के पत्रों में दिखाई दे। भारत को यदि 2030 तक एक महाशक्ति बनना है, तो हमें केवल 'कंजम्पशन इकोनॉमी' बनकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि हमें 'इन्वेस्टमेंट लेड ग्रोथ' की ओर मजबूती से कदम बढ़ाने होंगे। निवेश का यह इंजन अब लौट



तो आया है, लेकिन इसे पूरी रफ्तार पकड़ने के लिए अभी वैश्विक अनिश्चितता के कोहरे के छंटने और ग्रामीण भारत की खुशहाली का इंतजार है।

2030 की दहलीज पर भारत: एक वैश्विक शक्ति का उदय?

अब तक की हमारी इस पड़ताल में हमने भारत की आर्थिक सेहत के कई पहलुओं को देखा—चाहे वह 7.8 प्रतिशत की शानदार विकास दर हो, तेल की कीमतों का अनिश्चित साया हो, या फिर निजी निवेश के इंजन की लौटती हुई धड़कनें। लेकिन ये तमाम आंकड़े और विश्लेषण हमें एक अंतिम और सबसे बड़े सवाल की ओर ले जाते हैं: क्या भारत वाकई 2030 तक दुनिया की एक निर्णायक आर्थिक महाशक्ति बन पाएगा? यह सवाल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि भारत दुनिया की तीसरी या चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनेगा या नहीं, क्योंकि जिस रफ्तार से हम बढ़ रहे हैं, वह मुकाम तो हम हासिल कर ही लेंगे। असली सवाल यह है कि क्या भारत एक ऐसी आर्थिक शक्ति बन पाएगा, जिसकी वृद्धि का असर वैश्विक उत्पादन, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, आधुनिक तकनीक और दुनिया के रणनीतिक निर्णयों पर पड़े?

आर्थिक शक्ति की परिभाषा केवल जी-डी-पी के बड़े आकार से तय नहीं होती। यदि हम दुनिया की मौजूदा महाशक्तियों को देखें, तो उनकी ताकत के अपने-अपने आधार हैं। अमेरिका की असली ताकत उसके डॉलर की सर्वव्यापकता और उसके दुनिया भर में फैले वित्तीय बाजारों में है। चीन की ताकत उसकी विशाल मैन्युफैक्चरिंग स्केल और दुनिया भर की सप्लाई चेन्स पर उसके कब्जे में है। वहीं, यूरोप की ताकत उसकी उच्च-मूल्य वाली तकनीक और नवाचार में छिपी है। भारत को यदि वैश्विक शक्ति बनना है, तो उसे अपनी शक्ति का एक ऐसा ही स्वतंत्र और मजबूत आर्थिक आधार तैयार करना होगा। हमें केवल एक बड़ा बाजार बनकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि हमें एक



The World Bank

बड़ा उत्पादक, एक बड़ा निर्यातक और एक बड़ा टेक्नोलॉजी क्रिएटर बनना होगा।

विश्व बैंक का हालिया आकलन कहता है कि भारत की वैश्विक आर्थिक हिस्सेदारी जो साल 2000 में महज 1.6 प्रतिशत थी, वह 2023 तक बढ़कर 3.4 प्रतिशत हो चुकी है। यह एक बड़ी उपलब्धि है, लेकिन 2030 तक की छलांग के लिए यह पर्याप्त नहीं है। विश्व बैंक के अनुसार, भारत को एक उच्च-आय वाली अर्थव्यवस्था बनने के लिए अपनी निवेश दर को मौजूदा 33.5 प्रतिशत से बढ़ाकर साल 2035 तक करीब 40 प्रतिशत तक ले जाना होगा। यह कोई मामूली लक्ष्य नहीं है। इसके लिए हमें न केवल घरेलू पूंजी को जुटाना होगा, बल्कि बड़े पैमाने पर ऐसी विदेशी पूंजी को आकर्षित करना होगा जो केवल अल्पकालिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि लंबी अवधि के निर्माण के लिए भारत आए।

यहीं हमारी कहानी का सबसे महत्वपूर्ण धागा फिर सामने आता है: निवेश की गुणवत्ता। 2030 तक की यात्रा आज की 7.8 प्रतिशत की विकास दर से नहीं, बल्कि अगले कई वर्षों के दौरान होने वाले पूंजी निर्माण से तय होगी। भारत को लगातार बड़े पैमाने पर निजी निवेश चाहिए, और वह भी उन क्षेत्रों में जो एक साथ तीन काम कर सकें—रोजगार पैदा करें, उत्पादकता बढ़ाएं और निर्यात में वृद्धि करें। इसके लिए हमें उन नए क्षेत्रों में अपनी पैठ जमानी होगी जहां दुनिया का भविष्य टिका है, जैसे कि डेटा सेंटर्स, सेमीकंडक्टर्स, ए-आई और एडवांस मैनुफैक्चरिंग।

लेकिन 2030 की इस परीक्षा में सबसे बड़ी चुनौती हमारी अपनी सीमाओं के भीतर छिपी है, और वह है रोजगार। भारत के पास दुनिया के सबसे बड़े युवा वर्कफोर्स पूल में से एक है। इसे अक्सर डेमोग्राफिक डिविडेंड कहा जाता है, लेकिन हकीकत यह है कि यह डेमोग्राफिक डिविडेंड अपने-आप में कोई वरदान नहीं है। यदि हम अपनी युवा आबादी को पर्याप्त और उत्पादक रोजगार नहीं दे पाए, तो यही वरदान एक

सामाजिक और आर्थिक बोझ बन सकता है। विश्व बैंक ने स्पष्ट रूप से भारत की विकास रणनीति के केंद्र में 'प्राइवेट सेक्टर लेड जॉब क्रिएशन' यानी निजी क्षेत्र के नेतृत्व में रोजगार सृजन को रखा है।

यही वह मोर्चा है जहां तेज जी-डी-पी वृद्धि की सीमाएं दिखाई देती हैं। यदि हमारा निवेश केवल ऐसी मशीनों और तकनीक में जा रहा है जो बहुत कम लोगों को रोजगार देती हैं, तो उत्पादन तो बढ़ जाएगा, लेकिन आम आदमी की क्रय-शक्ति यानी खरीदने की ताकत नहीं बढ़ेगी। इसके विपरीत, टेक्सटाइल, फुटवियर, इलेक्ट्रॉनिक्स असंबली और फूड प्रोसेसिंग जैसे क्षेत्रों में बड़े निवेश की आवश्यकता है जो लाखों की संख्या में रोजगार पैदा कर सकें। 2030 का असली सवाल यही होगा कि क्या भारत अपनी युवा आबादी को केवल एक 'उपभोक्ता' बनाएगा या उन्हें 'उत्पादक' भी बनाएगा?

तकनीक के मामले में भी भारत एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। हमारे पास आई-टी और डिजिटल सेवाओं में पहले से ही एक वैश्विक बढ़त है। लेकिन अब अगला चरण ए-आई, चिप निर्माण, रक्षा तकनीक और बायो-टेक्नोलॉजी का है। यहाँ भारत के पास अवसर तो बहुत बड़े हैं, लेकिन केवल तकनीक का उपभोक्ता बनना काफी नहीं होगा। 2030 तक भारत को यह साबित करना होगा कि वह तकनीक को बड़े पैमाने पर विकसित कर सकता है, उसका स्वदेशीकरण कर सकता है और उसे दुनिया को बेच भी सकता है। ए-आई के इस दौर में असली छलांग तभी लगेगी जब भारत के अपने डिजिटल बुनियादी ढांचे के ऊपर भारतीय बौद्धिक संपदा और वैश्विक स्तर की कंपनियां खड़ी होंगी।

चौथी महत्वपूर्ण शर्त ऊर्जा और भू-राजनीति की है। भारत तेजी से बढ़ सकता है, लेकिन यदि हमारी ऊर्जा जरूरतों का बड़ा हिस्सा हमेशा आयातित तेल पर निर्भर रहा, तो पश्चिम एशिया का हर संकट हमारी विकास दर को प्रभावित





करता रहेगा। इसीलिए रिन्यूएबल एनर्जी, परमाणु ऊर्जा, एनर्जी स्टोरेज और इलेक्ट्रिक मोबिलिटी अब केवल पर्यावरण बचाने की नीतियां नहीं हैं, बल्कि ये हमारी आर्थिक सुरक्षा की ढाल हैं। भारत अब परमाणु क्षमता को बड़े पैमाने पर बढ़ाने की तैयारी कर रहा है और निजी क्षेत्र को भी इस दिशा में जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं। लेकिन इसके लिए हमें बड़ी मात्रा में पूंजी के साथ-साथ एक बहुत बड़े कुशल वर्कफोर्स की भी जरूरत होगी।

पांचवीं और अंतिम शर्त यह है कि क्या दुनिया भारत को एक विश्वसनीय विकल्प के रूप में स्वीकार करेगी? चीन+1 की चर्चा भारत के लिए एक बड़ा दरवाजा तो खोलती है, लेकिन उस दरवाजे के भीतर प्रवेश करने के लिए हमें अपनी लॉजिस्टिक्स लागत घटानी होगी, सीमा शुल्क और सरकारी नियमों को सरल करना होगा और निर्यात उन्मुख विनिर्माण को बड़े पैमाने पर बढ़ाना होगा। तभी वैश्विक कंपनियां भारत को सिर्फ एक बड़े बाजार के रूप में नहीं, बल्कि अपने ग्लोबल प्रोडक्शन बेस के रूप में देखेंगी।

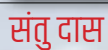
तो क्या 2030 तक भारत वैश्विक आर्थिक शक्ति बन सकता है? जवाब है—हां, संभावना पूरी तरह वास्तविक है। लेकिन यह अपने-आप होने वाली कोई प्रक्रिया नहीं है। भारत के पास वे शुरुआती आधार मौजूद हैं जो किसी भी बड़ी आर्थिक शक्ति के लिए जरूरी होते हैं—एक विशाल बाजार, युवा आबादी, मजबूत सेवा क्षेत्र, डिजिटल बुनियादी ढांचा और अपेक्षाकृत मजबूत मैक्रो-इकोनॉमिक बफर्स। लेकिन हमारी कमजोरियां भी उतनी ही वास्तविक हैं—तेल आयात पर भारी निर्भरता, कम प्रति व्यक्ति आय, रोजगार की जटिल चुनौती, उत्पादकता का अंतर और राजकोषीय दबाव।

निष्कर्ष के तौर पर, 2030 का फैसला आज ही लिख देना जल्दबाजी होगी। भारत के पास क्षमता है, लेकिन क्षमता और उपलब्धि के बीच के अगले चार-पांच वर्ष बहुत निर्णायक होंगे। यदि हमारा निवेश मैन्युफैक्चरिंग में बदलता है, यदि हमारे निर्यात बढ़ते हैं और यदि उत्पादकता में सुधार होता है, तो भारत निश्चित रूप से 2030 तक वैश्विक आर्थिक शक्ति-संतुलन में एक निर्णायक भूमिका निभाएगा। 7.8 प्रतिशत की वृद्धि ने हमारी क्षमता दिखाई है, लेकिन अब असली सवाल गति का नहीं, बल्कि रूपांतरण का है। 2030 की यात्रा यह तय करेगी कि भारत की यह क्षमता कितनी स्थायी और कितनी वैश्विक बनती है।

संकटों के बीच घिरी इस दुनिया में भारत निश्चित रूप से एक उम्मीद की तरह खड़ा है। लेकिन हमारी असली ताकत एक तिमाही के 7.8 प्रतिशत में नहीं, बल्कि इस बात में छिपी है कि हम इस रफ्तार को कितने दशकों तक बरकरार रख पाते हैं और इसे कितने करोड़ों लोगों के जीवन में वास्तविक खुशहाली के रूप में बदल पाते हैं। मंजिल अभी दूर है, लेकिन भारत ने अपने कदम मजबूती से बढ़ा दिए हैं।

मंजिल अभी दूर है

भारत की यह आर्थिक महागाथा अभी लिखी जा रही है। 7.8 प्रतिशत की एक तिमाही हमारी सफलता की अंतिम मुहर नहीं है, बल्कि यह एक नई शुरुआत का आह्वान है। आने वाले चार वर्ष भारत के लिए बनाने या बिगड़ने वाले होंगे। यदि हम अपनी संरचनात्मक समस्याओं को सुलझा पाए, तो 2030 का सूरज एक ऐसी महाशक्ति के उदय का साक्षी होगा जिसे दुनिया ने पहले कभी नहीं देखा।



विचार का द्वंद्व व

जेन जेड

को साधने की
सियासी जंग

को साधने की सियासी जंग





से जुड़ा हुआ है। यह सावरकर जैसे हिंदुत्व के प्रतीक स्तंभों की भूमि रही है, जिन्होंने फर्ग्यूसन कॉलेज में पढ़ाई की और येरवडा जेल में समय बिताया। आज का पुणे एक तरफ सावरकर और पेशवाओं की विरासत को सहेजता है, तो दूसरी तरफ इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) के क्षेत्र में वैश्विक शक्ति बनकर उभरा है। ऐसे शहर में राहुल गांधी का पितृसत्ता और मनुस्मृति पर हमला और एबीवीपी का वंदे मातरम के जरिए राष्ट्रवाद का दांव, यहाँ के शिक्षित और जागरूक युवाओं के बीच एक नई बहस का कारण बना है।

राष्ट्रगीत और तुष्टीकरण का नया मोर्चा

एबीवीपी ने पुणे के इस आयोजन को कांग्रेस के लिए एक आईने की तरह इस्तेमाल किया। हाल ही में संसद के मानसून सत्र के दौरान पारित एक कानून के बावजूद, कांग्रेस द्वारा वंदे मातरम के सभी छह पदों को न गाए जाने पर भाजपा ने आक्रामक रुख अपनाया। गृह मंत्री अमित शाह ने इस मुद्दे को सीधे 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' से जोड़ते हुए कांग्रेस पर तीखा प्रहार किया। शाह ने आरोप लगाया कि 1937 में वंदे मातरम के पदों को सीमित करने का कांग्रेस का निर्णय मुस्लिम लीग के सामने झुकने का परिणाम था और यह आज भी अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की उसी पुरानी नीति का हिस्सा है। शाह की यह दलील भाजपा के उस बड़े विमर्श को पुष्ट करती है जहाँ वे सावरकर, अनुच्छेद 370 और पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद के खिलाफ सैन्य कार्रवाई जैसे मुद्दों पर एक स्पष्ट और निर्भीक राष्ट्रवाद की बात करते हैं। भाजपा ने कांग्रेस की उस कमजोरी को पकड़ा है जहाँ राष्ट्रगीत की र्धार्मिक शब्दावली से एक वर्ग विशेष को होने वाली असुविधा पर कांग्रेस चुप्पी साध लेती है।

असंतोष का नया व्याकरण: सीजेपी (CJP) और छात्र आंदोलन

जून 2024 के लोकसभा चुनावों के बाद, जहाँ भाजपा को कम बहुमत के साथ सत्ता में लौटना पड़ा, वहीं सरकार के सामने पहली बड़ी चुनौती 'कोकरोच जनता पार्टी' (सीजेपी) के रूप में सामने आई। नीट (NEET) जैसी महत्वपूर्ण सार्वजनिक परीक्षाओं में पेपर लीक के आरोपों ने छात्रों के बीच जबरदस्त असंतोष पैदा किया। दिल्ली के जंतर-मंतर पर शुरु हुआ यह विरोध और लद्दाख के कार्यकर्ता सोनम वांगचुक का उपवास देखते ही देखते छात्र आक्रोश का केंद्र बन गया। वामपंथी छात्र संगठनों की सक्रियता ने इस आंदोलन को न केवल सांगठनिक ताकत दी, बल्कि सड़कों पर एक ऐसी उपस्थिति दर्ज कराई जिससे मोदी सरकार की सत्ता को कड़ी चुनौती मिलती दिखी।

पुणे में राहुल गांधी की छात्रों के साथ बातचीत इसी युवा

महाराष्ट्र की सांस्कृतिक और शैक्षिक राजधानी पुणे इन दिनों भारतीय राजनीति के दो विपरीत ध्रुवों के बीच छिड़े एक बड़े वैचारिक युद्ध का साक्षी बनी है। जहाँ एक तरफ कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने 'छात्रों की गूँज' कार्यक्रम के माध्यम से युवाओं, विशेषकर महिलाओं को 'पितृसत्ता को ध्वस्त' करने और 'मनुस्मृति' जैसे पुरातन विचारों को त्यागने का आह्वान किया, वहीं उससे मात्र पांच किलोमीटर दूर भाजपा समर्थित अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी) ने 'युवा की आवाज' रैली के जरिए देशभक्ति का शंखनाद किया। पुणे के इस सियासी मैदान में एक तरफ सामाजिक न्याय और वैचारिक क्रांति की बातें थीं, तो दूसरी तरफ राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम' के पूर्ण गायन और सांस्कृतिक गौरव का प्रदर्शन। यह विरोधाभास केवल दो रैलियों का नहीं था, बल्कि यह भारत के भविष्य की दिशा और युवाओं के मन को जीतने के लिए लड़ी जा रही दो अलग-अलग विचारधाराओं का सीधा मुकाबला था।

पुणे की प्रगतिशील विरासत और आधुनिक आकांक्षाएं

पुणे का अपना एक विशिष्ट चरित्र है। यह शहर पेशवाओं के अधीन मराठा पुनर्जागरण का केंद्र रहा है और दशकों से शिक्षा, संस्कृति तथा कला का स्रोत बना हुआ है। पुणे की पहचान उसके मध्यमवर्गीय कार्य-नैतिकता और महिलाओं को मिलने वाली स्वतंत्रता से रही है। भारत के अन्य शहरों की तुलना में यहाँ की महिलाओं ने बहुत पहले ही आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता का परिचय दिया था, जहाँ हर उम्र की महिलाएं दोपहिया वाहनों पर सड़कों पर नजर आती हैं। लेकिन इस प्रगतिशीलता के साथ-साथ पुणे अपनी जड़ों से भी मजबूती



असंतोष को भुनाने की एक कोशिश है। राहुल अब उन छात्रों के बीच अपनी पैठ बनाने की कोशिश कर रहे हैं जो परीक्षाओं में गड़बड़ी और नौकरियों की कमी से परेशान हैं। यह 'जनरेशन जेड' (Gen Z) तक पहुँचने की एक सोची-समझी रणनीति है। हालांकि, राहुल की इस राह में चुनौती न केवल भाजपा है, बल्कि वे नए राजनीतिक खिलाड़ी भी हैं जो स्थापित दलों को दरकिनार कर रहे हैं। तमिलनाडु में अभिनेता विजय और बिहार में प्रशांत किशोर की जन सुराज पार्टी की सक्रियता यह संकेत दे रही है कि आज का युवा केवल पारंपरिक विपक्ष की ओर नहीं देख रहा, बल्कि वह नए और गैर-पारंपरिक नेतृत्व की तलाश में भी है।

रणनीति का दोहराव: रफाल से नीट तक

राहुल गांधी की रणनीति पिछले कुछ वर्षों से एक ही ढर्रे पर चल रही है—नरेंद्र मोदी पर सीधा और व्यक्तिगत हमला करना। 2019 के चुनावों में रफाल सौदे को लेकर 'चौकीदार चोर है' का नारा और एचएएल (HAL) के नुकसान के दावों ने कांग्रेस के अभियान की रूपरेखा तैयार की थी। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट के फैसले और जनता के जनादेश ने उन आरोपों को सिरे से खारिज कर दिया था, लेकिन राहुल ने अपनी रणनीति नहीं बदली। रफाल के बाद अब वे नीट (NEET) और भ्रष्टाचार के अन्य आरोपों के जरिए प्रधानमंत्री की 'विश्वसनीयता' (क्रेडिबिलिटी) पर प्रहार कर रहे हैं। कांग्रेस का मानना है कि यदि प्रधानमंत्री की बेदाग छवि को धूमिल किया जा सके, तो भाजपा के दुर्ग को ढहाना आसान होगा।

लेकिन यहाँ एक बड़ा पेंच है। कांग्रेस अक्सर भाजपा के उस मजबूत कल्याणकारी तंत्र को कम आंकती है जिसने करोड़ों लोगों को सीधे लाभ पहुंचाया

है। उज्ज्वला योजना, मुफ्त राशन, पक्के मकान और आयुष्मान भारत जैसे कार्डों ने गरीबों के बीच मोदी की एक ऐसी विश्वासनीयता बनाई है जिसे केवल राजनीतिक नारों से तोड़ना मुश्किल है। राहुल का रूप्रेम की दुकानर और 'पुणे मंजे प्रेम' (पुणे मतलब प्रेम) का आह्वान इस कल्याणकारी और सुरक्षात्मक राष्ट्रवाद के सामने अब भी संघर्ष करता दिख रहा है।

मंडल की वापसी और सामाजिक समीकरण

राहुल गांधी ने भाजपा के व्यापक हिंदू गठबंधन को तोड़ने के लिए एक बार फिर 'मंडल' की राजनीति का सहारा लिया है। वे नौकरशाही और निजी क्षेत्र में जातिगत प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठा रहे हैं और दावा कर रहे हैं कि देश की '90 प्रतिशत' आबादी (दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग और गरीब) व्यवस्था से बाहर है। उनकी 'रोहित वेमुला' कानून की मांग और जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व की जिद एक ऐसे वर्ग को आकर्षित करने की कोशिश है जो विकास की दौड़ में खुद को पीछे महसूस करता है।

हालांकि, यह रणनीति दोधारी तलवार है। जातिगत आरक्षण और प्रतिनिधित्व पर राहुल का यह कड़ा रुख उच्च वर्गों को कांग्रेस से दूर कर सकता है। भाजपा ने इसके जवाब में र्सर्व समाजर् और 'अन्त्योदय' का कार्ड खेला है। 'पीएम विश्वकर्मा' जैसी योजनाएं जो विशेष रूप से पिछड़े वर्ग के कारीगरों के लिए हैं, भाजपा की उस रणनीति का हिस्सा हैं जहाँ वह जाति की पहचान को विकास और आत्मनिर्भरता से जोड़ती है। मोदी का 'विकसित भारत' का संकल्प एक तरफ आकांक्षाओं को जगाता है, तो दूसरी तरफ वह जातिगत विभाजन के बजाय एक एकीकृत भारतीय पहचान की बात करता है।





युवा संवाद: अनुभव बनाम आकांक्षा

उम्र में राहुल गांधी से काफी बड़े होने के बावजूद, नरेंद्र मोदी ने युवा मतदाताओं के साथ एक अनूठा जुड़ाव बनाया है। 'परीक्षा पे चर्चा', स्टार्टअप्स के साथ नियमित बैठकें और खिलाड़ियों के साथ संवाद के जरिए वे खुद को एक ऐसे मार्गदर्शक के रूप में पेश करते हैं जो उत्कृष्टता की बात करता है। भाजपा की रणनीति युवाओं को 'अवसर' और 'कौशल' देने की है, जबकि कांग्रेस उन्हें उनके 'अधिकार' और 'अन्याय' के बारे में सचेत कर रही है। पुणे जैसे शिक्षा केंद्र में ये दोनों विमर्श आमने-सामने हैं। एक तरफ वे युवा हैं जो पेपर लीक और बेरोजगारी से गुस्से में हैं, तो दूसरी तरफ वे भी हैं जो स्पेस-टेक, डिजिटलीकरण और ग्लोबल इंडिया के सपनों में खुद को देखते हैं।

पुणे की सड़कों पर छात्रों के विरोध प्रदर्शन और रैलियां यह दर्शाती हैं

कि भारत का युवा अब केवल शांत दर्शक नहीं है। शहरी जीवन, आय और आकांक्षाओं के बीच का अंतर वास्तविक है और समय-समय पर नोएडा या मानेसर जैसी जगहों पर यह आक्रोश बनकर फूटता भी है। कांग्रेस इसी restless (बेचैन) वर्ग को अपना नया राजनीतिक आधार बनाना चाहती है। लेकिन चुनौती यह है कि 'जनरेशन जेड' कोई एक जैसी सोच रखने वाला समूह नहीं है। वह तकनीक से जुड़ा है, महत्वाकांक्षी है और अक्सर विचारधारा से ज्यादा परिणामों (रिजल्ट्स) को प्राथमिकता देता है।

निष्कर्ष: संप्रभुता और अस्मिता की लड़ाई

पुणे का यह राजनीतिक तमाशा आने वाले कई विधानसभा और लोकसभा चुनावों की एक छोटी झलक मात्र है। राहुल गांधी का 'पितृसत्ता' और 'कम्पलीट' वंदे मातरम पर भाजपा का 'राष्ट्रवाद'—ये दो अलग-अलग भारत

की कल्पनाएं हैं। भाजपा जहाँ एक सांस्कृतिक रूप से मुखर और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भारत की बात करती है, वहीं कांग्रेस एक ऐसी व्यवस्था की मांग कर रही है जो अधिक समावेशी हो और जहाँ जाति तथा लैंगिक समानता केंद्र में हो।

2027 और उसके बाद के चुनावों का परिणाम इस बात पर निर्भर करेगा कि कौन सा दल युवाओं के मन के इस द्वंद्व को सुलझा पाता है। क्या राहुल का मंडल कार्ड और प्रेम का संदेश मोदी के कल्याणकारी राष्ट्रवाद और विकसित भारत के संकल्प पर भारी पड़ेगा? पुणे ने इस युद्ध की जमीन तैयार कर दी है। यहाँ की 'छात्रों की गुँज' और 'युवा की आवाज' के बीच असली फैसला उस 'जनरेशन जेड' के हाथों में है जो एक तरफ अपनी जड़ों और संस्कृति को सहेजना चाहती है, तो दूसरी तरफ एक आधुनिक और न्यायपूर्ण भविष्य की तलाश में है।



प्रो. (डॉ.) संजय जायसवाल

सांस्कृतिक विस्थापन का विस्थापन

राहुल सांकृत्यायन और धूमिल की मूर्तियाँ तोड़े जाने की घटनाएँ केवल साहित्यकारों का अपमान नहीं, बल्कि भारत की बहुलतावादी सांस्कृतिक चेतना, ज्ञान-परंपरा और असहमति की लोकतांत्रिक संस्कृति पर बढ़ते वैचारिक असहिष्णुता के संगठित हमले का गंभीर संकेत हैं।

हाल ही में 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' का आह्वान करने वाले हिंदी के प्रसिद्ध लेखक महापंडित राहुल सांकृत्यायन और 'संसद से सड़क तक' की बात करने वाले कवि धूमिल की मूर्तियाँ तोड़ दी गईं। यह पहली बार नहीं है कि लेखकों और कलाकारों का अनादर हुआ हो। पर सच यह है कि ज्ञान पर ऐसा हमला पहले इतना तीव्र नहीं था। पहले असहमतियों के लिए भी पर्याप्त जगहें थीं। लेखकों की मूर्ति तोड़ने का ऐसा क्रूरतम और असंवेदनशील वाक्या इस देश में पहले बहुत कम देखने को मिलता था।

बंगाल में राहुल सांकृत्यायन की मूर्ति का तोड़ा जाना हमें चकित करता है। दरअसल बंगाल आरंभ से ही नवजागरण का एक बड़ा केंद्र रहा है। हिंदी प्रदेशों की तुलना में यहाँ का जनमानस अपने सांस्कृतिक मनीषियों को अपार स्नेह और मान देता रहा है। बंगाल की पहचान राजा राममोहन राय, विद्यासागर, रवींद्रनाथ, बंकिमचंद्र, शरतचंद्र जैसे सुधारकों और लेखकों से बनी है। पूरे देश में इस क्षेत्र को एक सांस्कृतिक केंद्र के तौर





पर देखा जाता है। बंगाल के रानीगंज में स्थापित राहुल सांकृत्यायन की मूर्ति तोड़ा जाना दरअसल बंगाल के लगभग 150 वर्षों की विद्वता और सांस्कृतिक पहचान पर हमला है।

राहुल सांकृत्यायन भारतीयता के लेखक हैं। प्रगतिशील विचारों से भरे राहुल सांकृत्यायन ने जिस आलोचनात्मक और विवेकपूर्ण दृष्टि से भारतीय समाज, संस्कृति, इतिहास और दर्शन का मूल्यांकन किया है, वह स्वागत योग्य है। वे एक ऐसे तटस्थ लेखक हैं, जो किसी विचारधारा के फ्रेम

में नहीं बैठते हैं। उनका पूरा साहित्य भारतीयता की विरासत का आख्यान है।

ऐसे समय में यह घटना हमें ज्यादा उद्वेलित करती है। इन दिनों पूरे देश के अकादमिक जगत में भारतीय ज्ञान परंपरा की लहर चल रही है। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा की की शाखाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन का ऐसा अनादर हमारे भीतर यह प्रश्न पैदा करता है कि क्या हम सच में भारतीय ज्ञान परंपरा को आदर दे रहे हैं? या सिर्फ ढोंग कर रहे हैं?

इस घटना को इस रूप में भी देखा

जा सकता है क्या हिंदी प्रदेशों की तरह बंगाल में फासीवादी शक्तियों के उभार के कारण राहुल के साथ ऐसा घटित हुआ?

बहुत संभव है कि आज धार्मिक श्रेष्ठताबोध और कट्टरता के इस दौर में राहुल सांकृत्यायन की बातें फासिस्ट शक्तियों के मन में डर पैदा कर रही हो। जब वे कहते हैं- “तुम्हारे धर्म की क्षय, तुम्हारे भगवान की क्षय, तुम्हारे सदाचार की क्षय, तुम्हारे जात-पांत की क्षय, तुम्हारे जोकों की क्षय हो।” निश्चित तौर पर वे ऐसे हर धार्मिक-अंधत्व का



विरोध करते हैं जो लोगों के बीच शत्रुता और नफरत पैदा करती है।

आज जब पूरा तंत्र नफरत, हिंसा और विभाजन को प्रमोट करने में लगा है। तब धर्म, ईश्वर, वर्ण-व्यवस्था, लूट और भ्रष्टाचार का विरोध की बात करने वाले राहुल पर प्रहार स्वाभाविक है।

राहुल के प्रति नफरत की एक वजह यह भी हो सकती है कि कुछ लोगों द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा को सिर्फ पुरानी पोथियों में खोज जा रहा है जबकि सच यह है कि राहुल पुरानी पोथियों को संदेह की नजर से देखते हैं। उनका मानना है

कि- “हमारी 75% पुरानी पोथियों में बेवकूफियाँ हैं।” उस दौर में नेहरू भी राहुल सांकृत्यायन की विद्वता के कायल थे। आज नेहरू फासीवादियों की नजर में विलेन हैं। बहुत संभव है कि इसलिए भी उनपर आक्रमण हुआ हो ?

ऐसे में प्रतिक्रियावादी ताकतों को यह समझना चाहिए कि राहुल सांकृत्यायन और धूमिल की मूर्तियाँ तोड़ देने से वे उनकी सांस्कृतिक चेतना और प्रतिरोध को नहीं रोक सकते। यह समय अनपढ़ता और सूचनाओं का है। अंधभक्ति का उभार स्वाभाविक है। अंधभक्त ज्ञान को अपना शत्रु मानते हैं।

ज्ञान को शत्रु मानने वाले भला कैसे राहुल सांकृत्यायन और धूमिल जैसे लेखकों को बर्दाश्त कर सकते हैं? दोनों लेखक धर्मांधता एवं जातीय संस्कृति की नकारात्मक विरासत के विरोधी थे। हालांकि इन दिनों धर्म को सत्ता वर्चस्व के एक बड़े टूल्स के रूप में देखा जा रहा है। उस टूल्स के बाय प्रोडक्ट के तौर पर जाति, भाषा, संस्कृति, प्रांत और संप्रदाय आदि का इस्तेमाल किया जा रहा है।

देश को राष्ट्र बनाने की राष्ट्रवादियों की कोशिश ने भारत की बहुलतावादी पहचान को संकट में डाल दिया है। धर्म और राष्ट्र के पुनरुत्थान के बहाने एक ओर ‘राष्ट्र गौरव’ की वापसी का नैरेटिव बनाया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर हम देख सकते हैं कि कैसे यही पुनरुत्थानवादी मानसिकता धर्मांधता को जन्म दे रहा है।

राहुल सांकृत्यायन ने हमेशा धर्म के ऐसे रूप की आलोचना की है- “धर्म आज भी वैसा ही हजारों मूढ़ विश्वास का पोषक और मनुष्य की मानसिक दासता का समर्थक है।” आज हम अपने आसपास ऐसे बौद्धिक दासों को देख सकते हैं। जो कहने के लिए पढ़े-लिखे लोग हैं, पर उनका बौद्धिक उपनिवेशन हो चुका है। धर्म, जाति,

संप्रदाय, प्रांतीयता, भाषा के नाम पर लोगों को विभाजित किया जा रहा है। ताकि बंटे लोगों का बौद्धिक बंध्याकरण किया जा सके। इस बंध्याकरण की प्रक्रिया में सबसे बड़ी भूमिका बिकी हुई मीडिया, आईटी सेल और सांस्कृतिक रूप से विपन्न लोगों की भीड़ है। ऐसे लोग इतिहास को विकृत करने में लगे हैं। इतिहास बोध से कटे लोग अपनी परंपरा और समावेशी विरासत को समझने की जगह शत्रुता के पर्याय बनते जा रहे हैं। ऐसे में दो दर्जनों से ज्यादा भाषाओं के जानकार, दुर्लभ बौद्ध ग्रंथों का उद्धार करने वाले, संस्कृत कवियों, इतिहासकारों, दार्शनिक, ऐतिहासिक चरित्रों को मान देने वाले तथा किसानों की पक्षधरता करने वाले राहुल सांकृत्यायन और भारत के लोकतंत्र के विसंगतियों को ‘डिकोड’ करने वाले धूमिल पर हमला अस्वाभाविक नहीं है बल्कि एक सुनियोजित हमला है।

यह समय ‘हमारा’ और ‘उनका’ के द्वैत में फंसा जा रहा है। जो हमारे पक्ष में नहीं हैं, वे हमारे शत्रु हैं। शायद यही वजह है कि प्रगतिशीलता की बात करने वाले राहुल और धूमिल फासीवादियों को शत्रु की तरह दिखते हैं। अब प्रगतिशील लोग व्यवस्था को खटकने लगे हैं।

धर्मांधता की आलोचना करने वाले ये लोग उनको धर्म विरोधी लगते हैं। राष्ट्र की जगह देश की आत्मा की बात करने वाले और सत्ता से प्रश्न पूछने वाले देशद्रोही होते हैं। न्याय, अधिकार और रोजगार की बात करने वाले कानून तोड़ने वाले लगते हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि द्वैत और बनाम का यह खेल अब बंद होना चाहिए। यह समय भारत की समृद्ध परंपरा और बहुलतावादी संस्कृति के बीच एक समावेशी पुल बनाने की है। तभी हम राहुल सांकृत्यायन और धूमिल जैसे साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतीकों का विस्थापन और अतिक्रमण रोक पाएंगे।



उत्तर प्रदेश 2027: सियासी किलेबंदी एवं संघ का लोकमत परिष्कार



अनवर हुसैन

2024 के झटके के बाद, समन्वय की कमी को दूर करने के लिए 30 जून को गाजियाबाद में संघ के अनुषांगिक संगठनों की एक महत्वपूर्ण बैठक आयोजित की गई। इसका मुख्य केंद्र चुनाव योजना, अभियान रणनीति और भाजपा की जमीनी उपस्थिति को विस्तार देने में संघ की भूमिका थी।

भारतीय राजनीति के गलियारों में एक पुरानी और घिसी-पिटी सी लगने वाली कहावत है— 'दिल्ली का रास्ता उत्तर प्रदेश से होकर गुजरता है।' 2024 के लोकसभा चुनावों ने इस कहावत की सच्चाई को एक बार फिर नए और कड़वे अंदाज में रेखांकित किया। भाजपा, जो केंद्र में 'महासंपूर्ण बहुमत' का सपना देख रही थी, उसे उत्तर प्रदेश ने एक बड़ा राजनीतिक झटका दिया। 2019 में 62 सीटें जीतने वाली भाजपा 2024 में सिमटकर 33 पर आ गई। इस हार के पीछे कई कारण गिनाए गए, लेकिन सबसे प्रमुख विश्लेषण यह था कि जमीनी स्तर पर भाजपा और संघ के बीच उस समन्वय की कमी थी, जो उसकी जीत की गारंटी हुआ करती थी। 2024 की इस कड़वी याद को भाजपा और संघ अब दोहराना नहीं चाहते। यही कारण है कि 2027 के विधानसभा चुनावों के लिए शंखनाद अभी से कर दिया गया है।

2024 के झटके के बाद, समन्वय की कमी

को दूर करने के लिए 30 जून को गाजियाबाद में संघ के अनुषांगिक संगठनों की एक महत्वपूर्ण बैठक आयोजित की गई। इस बैठक का मुख्य केंद्र चुनाव योजना, अभियान रणनीति और भाजपा की जमीनी उपस्थिति को विस्तार देने में संघ की भूमिका थी। इस बैठक की गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसमें मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ, दोनों उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य और ब्रजेश पाठक, प्रदेश अध्यक्ष पंकज चौधरी और संगठन मंत्री धर्मपाल सिंह जैसे दिग्गज शामिल थे।

इसके तुरंत बाद, 10-12 जुलाई को कर्नाटक के बेलगावी में संघ की अखिल भारतीय प्रांत प्रचारक बैठक हुई। इसमें मोहन भागवत और दत्तात्रेय होसबोले जैसे शीर्ष नेतृत्व की मौजूदगी में उत्तर प्रदेश की स्थिति पर विस्तार से चर्चा हुई। सूत्रों के अनुसार, संघ परिवार चाहता है कि चुनाव से पहले उत्तर प्रदेश सरकार की हर कल्याणकारी योजना का लाभ राज्य के आखिरी लाभार्थी तक पहुंचे। संघ ने तय किया है कि

मजदूर संगठनों सहित उसके तमाम अनुषांगिक संगठनों को इस 'आउटरीच' (संपर्क अभियान) के लिए पूरी ताकत से मैदान में उतारा जाएगा। संगठन का स्पष्ट मानना है कि सत्ता में होने का लाभ तभी है जब आप अपनी योजनाओं के संदेश को सीधे मतदाता तक पहुंचा सकें।

टिकट वितरण और प्रदर्शन की कसौटी

गाजियाबाद की बैठक में एक और संवेदनशील मुद्दे पर चर्चा हुई—उम्मीदवारों का चयन। सूत्रों का कहना है कि वर्तमान विधायकों और मंत्रियों के प्रदर्शन का फीडबैक जुटाया जा रहा है। स्थानीय स्तर पर 'एंटी-इंकबेंसी' (सत्ता विरोधी लहर), जातिगत समीकरण और जनता के बीच स्वीकार्यता को परखने के लिए एक कड़ा पैमाना तय किया गया है। संकेत मिल रहे हैं कि यदि आवश्यक हुआ, तो 25 से 40 प्रतिशत तक मौजूदा विधायकों के टिकट काटे जा सकते हैं।

भाजपा की रणनीति स्पष्ट है: चुनाव मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के चेहरे और नेतृत्व में लड़ा जाएगा, लेकिन निर्वाचन क्षेत्र के स्तर पर उपजे असंतोष को दूर करने के लिए उम्मीदवारों में बड़ा फेरबदल किया जाएगा। टिकट वितरण के लिए जो मापदंड तय किए गए हैं, उनमें विधायक की अपने क्षेत्र में सक्रियता, संगठन के भीतर उनकी स्वीकार्यता, सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन और सबसे महत्वपूर्ण—विपक्ष को मात देने की क्षमता शामिल है। इसके अलावा, बार-बार होने वाले 'पेपर लीक' जैसे मुद्दों पर भी चर्चा हुई और संघ ने सुझाव दिया है कि इन मुद्दों को बड़ा

राजनीतिक मुद्दा बनने से पहले ही सुलझाना अनिवार्य है।

'लोकमत परिष्कार': संघ की जमीनी घेराबंदी

आरएसएस की उत्तर प्रदेश में सक्रियता केवल बैठकों तक सीमित नहीं है। संघ 'लोकमत परिष्कार' के नाम से एक विशाल मतदाता जागरूकता अभियान शुरू कर रहा है। यह अभियान हरियाणा और पश्चिम बंगाल के उन अभियानों की तर्ज पर होगा, जहां संघ के स्वयंसेवकों ने घर-घर जाकर मतदाताओं को जागरूक किया था।

संघ के एक पदाधिकारी के अनुसार, यह अभियान अभूतपूर्व होगा। उत्तर प्रदेश के 75 जिलों में से प्रत्येक जिले में लगभग 80 या उससे अधिक समूह होंगे। हर समूह में 4 से 5 स्वयंसेवक होंगे जो बस्तियों और गांवों में घूमेंगे। केवल संघ ही नहीं, बल्कि अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद (एबीवीपी), विश्व हिंदू परिषद (विएचपी), भारतीय किसान संघ (बीकेएस) और भारतीय मजदूर संघ जैसे संगठनों के भी अलग-अलग समूह होंगे। अनुमान है कि लगभग 15,000 समूह औसतन 30-30 बैठकें करेंगे। यानी पूरे उत्तर प्रदेश में कम से कम 5 लाख छोटी-छोटी बैठकें होंगी, जिनके जरिए 40 लाख से अधिक परिवारों तक सीधे पहुंचा जाएगा।

इस अभियान का उद्देश्य भाजपा के लिए वोट मांगना नहीं, बल्कि 'लोकमत' का परिष्कार करना है। विएचपी मंदिर समितियों और सामाजिक संगठनों से जुड़ेगी, एबीवीपी छात्रों के बीच जाएगी और किसान संघ किसानों के परिवारों से संवाद करेगा। वे राष्ट्रीय और स्थानीय महत्व के मुद्दों



पर चर्चा करेंगे। उदाहरण के तौर पर, यदि बुंदेलखंड में सूखे की समस्या है, तो स्वयंसेवक वहां जाकर सरकार की जल संरक्षण योजनाओं और राहत कार्यों की जानकारी देंगे। यदि युवाओं में पेपर लीक को लेकर गुस्सा है, तो उन्हें सरकार द्वारा उठाए गए कड़े कदमों और नई प्रणालियों के बारे में समझाया जाएगा। यह एक अनौपचारिक लेकिन अत्यंत प्रभावी संवाद तंत्र होगा।

अयोध्या: आस्था और जवाबदेही का सवाल

बेलगावी की बैठक में एक और महत्वपूर्ण मुद्दा उठा— अयोध्या राम मंदिर दान में कथित अनियमितताओं के आरोप। संघ ने इस मुद्दे पर जनता की भावनाओं को भांपने और इसके प्रभाव का आकलन करने का काम प्रांत प्रचारकों को सौंपा है। भाजपा और संघ का मानना है कि राम मंदिर उनकी सांस्कृतिक जीत का प्रतीक है और इस पर कोई भी आंच नहीं आने दी जा सकती। लखनऊ की बैठकों में यह निर्णय लिया गया कि राम मंदिर के मुद्दे को नजरअंदाज नहीं किया जाएगा। पार्टी ने तय किया है कि वह जनता को यह दिखाएगी कि यदि कहीं कोई गड़बड़ी हुई है, तो वह जिम्मेदारी स्वीकार करने और कड़ी कार्रवाई करने में पीछे नहीं हटेगी। रहम एक अलग तरह की पार्टी हैं (पार्टी विद ए डिफरेंस) के नारे को चरितार्थ करने के लिए दोषियों को दंडित करना अनिवार्य माना गया है।

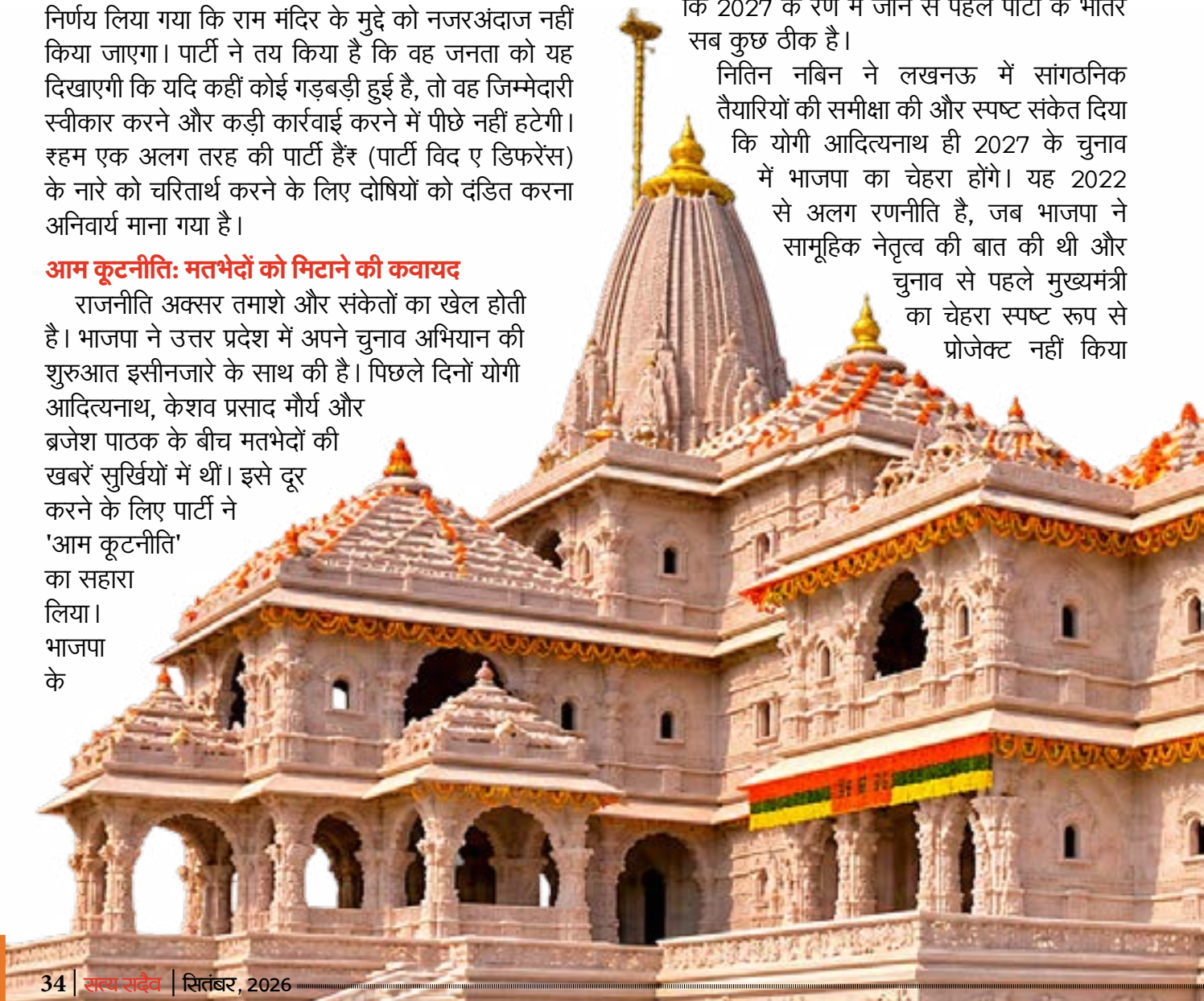
आम कूटनीति: मतभेदों को मिटाने की कवायद

राजनीति अक्सर तमाशे और संकेतों का खेल होती है। भाजपा ने उत्तर प्रदेश में अपने चुनाव अभियान की शुरुआत इसीनजारे के साथ की है। पिछले दिनों योगी आदित्यनाथ, केशव प्रसाद मौर्य और ब्रजेश पाठक के बीच मतभेदों की खबरें सुर्खियों में थीं। इसे दूर करने के लिए पार्टी ने 'आम कूटनीति' का सहारा लिया। भाजपा के



राष्ट्रीय अध्यक्ष और चुनाव प्रभारी नितिन नबिन की मौजूदगी में इन नेताओं ने एक-दूसरे के घर जाकर आम खाए और मुस्कुराते हुए कैमरों के सामने आए। यह एक बड़ा संदेश था कि 2027 के रण में जाने से पहले पार्टी के भीतर सब कुछ ठीक है।

नितिन नबिन ने लखनऊ में सांगठनिक तैयारियों की समीक्षा की और स्पष्ट संकेत दिया कि योगी आदित्यनाथ ही 2027 के चुनाव में भाजपा का चेहरा होंगे। यह 2022 से अलग रणनीति है, जब भाजपा ने सामूहिक नेतृत्व की बात की थी और चुनाव से पहले मुख्यमंत्री का चेहरा स्पष्ट रूप से प्रोजेक्ट नहीं किया





था। लेकिन इस बार, योगी आदित्यनाथ की 'कठोर प्रशासक' की छवि को ही भाजपा अपनी सबसे बड़ी पूंजी मानकर चल रही है।

सोशल इंजीनियरिंग: पिछड़ों और दलितों पर फोकस

संगठनात्मक मोर्चे पर भाजपा ने अपनी 'सोशल इंजीनियरिंग' (सामाजिक इंजीनियरिंग) को और अधिक धार दी है। भाजपा की नई प्रदेश टीम में अन्य पिछड़ा वर्ग यानी ओबीसी का प्रतिनिधित्व 16 से बढ़ाकर 25 कर दिया गया है। यह किसी भी सामाजिक समूह में सबसे अधिक है। पार्टी का स्पष्ट फोकस गैर-यादव ओबीसी समुदायों को अपने साथ जोड़ने पर है।

इसके अलावा, अनुसूचित जाति (विशेषकर गैर-जाटव), अनुसूचित जनजाति, राजपूत, वैश्य, कायस्थ और जाटों के बीच भी संतुलन बनाने की कोशिश की गई है। सामान्य श्रेणी में ब्राह्मणों को सबसे अधिक 12 पद दिए गए हैं, जबकि राजपूतों (ठाकुरों) को 9 पद मिले हैं।

भाजपा यह सुनिश्चित करना चाहती है कि

उसका सामाजिक गठबंधन 2024

की तुलना में कहीं

अधिक

मजबूत और व्यापक हो।

2027 का लॉन्ग मार्च

भाजपा ने 2027 के विधानसभा चुनावों के लिए अपना 'लॉन्ग मार्च' यानी लंबी पैदल यात्रा शुरू कर दी है। चुनाव में अभी भी 8 महीने से अधिक का समय है, लेकिन पार्टी ने उम्मीदवार चयन, सांगठनिक फेरबदल, आंतरिक मतभेदों को सुलझाने और जमीनी संपर्क के मामले में विपक्ष से बढ़त ले ली है। राजनीतिक विश्लेषक बद्री नारायण के अनुसार, भाजपा इस बार सांगठनिक एकजुटता और बारीक तैयारी पर सबसे अधिक जोर दे रही है।

संघ का घर-घरदस्तक देना और भाजपा की नई सोशल इंजीनियरिंग—ये दोनों मिलकर उत्तर प्रदेश में एक ऐसा सुरक्षा कवच तैयार कर रहे हैं जो 2024 जैसी चूक को दोबारा न होने दे। 2027 का यह चुनाव केवल एक राज्य की सरकार चुनने का चुनाव नहीं होगा, बल्कि यह 2029 के लोकसभा चुनावों के लिए भाजपा के भविष्य और उसके मनोबल की दिशा तय करेगा। लखनऊ की सत्ता के जरिए दिल्ली के रास्ते को एक बार फिर निष्कटक बनाने के लिए संघ और भाजपा ने अपनी पूरी ताकत झोंक दी है।





मनोज कुमार

एफसीआरए संशोधन

विदेशी चंदे पर कस्यता शिकंजा

विदेशी चंदा नियमन संशोधन विधेयक को विस्तृत विचार-विमर्श के लिए संयुक्त संसदीय समिति के पास भेजने के सरकार के हालिया फैसले ने फिलहाल सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच बढ़ते राजनीतिक टकराव को थाम दिया है। हालांकि, सरकार ने इस प्रस्तावित कानून को संसदीय संवीक्षा के अधीन रखकर एक तरह का लचीलापन जरूर दिखाया है, लेकिन उसके इरादे पूरी तरह स्पष्ट हैं। सरकार एक निश्चित समयसीमा के भीतर इस कानून को और अधिक सख्त बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। यह बदलाव केवल प्रशासनिक सुधार नहीं हैं, बल्कि इन्हें भारत की आंतरिक सुरक्षा और आर्थिक हितों की रक्षा की दिशा में उठाए गए

प्रशासनिक शून्यता और संपत्ति का प्रबंधन

मौजूदा कानूनी ढांचे में सबसे बड़ी कमी यह देखी गई है कि यह केवल उस समय तक विदेशी चंदे का नियमन करता है जब तक किसी संस्था का पंजीकरण वैध रहता है। लेकिन जब किसी संस्था का रजिस्ट्रेशन रद्द कर दिया जाता है, या वह खुद इसे सरेंडर कर देती है, या फिर रिन्यूअल न होने के कारण लाइसेंस की अवधि समाप्त हो जाती है, तब उस विदेशी पैसे से बनाई गई संपत्तियों और बचे हुए फंड के प्रबंधन को लेकर कानून मौन था। इसी प्रशासनिक और वैधानिक शून्यता को भरने के लिए प्रस्तावित संशोधनों में एक नामित प्राधिकरण बनाने की बात कही गई है। इसके साथ ही कानून में एक नया अध्याय 3E जोड़ा जा रहा है जो ऐसी संपत्तियों के पर्यवेक्षण, प्रबंधन और निपटान से संबंधित है।

नए नियमों के अनुसार, जब किसी संस्था का पंजीकरण रद्द या समाप्त होगा, तो उसकी विदेशी संपत्तियां और फंड अस्थायी रूप से नामित प्राधिकरण के पास सुरक्षित हो जाएंगे। यदि वह संस्था निर्धारित समय के भीतर अपना पंजीकरण फिर से प्राप्त करने में सफल रहती है, तो ये संपत्तियां उसे वापस मिल सकती हैं। लेकिन यदि पंजीकरण की बहाली नहीं होती है, तो ये संपत्तियां स्थायी रूप से सरकार के स्वामित्व में चली जाएंगी। सरकार इन संपत्तियों को किसी अन्य सरकारी एजेंसी को सौंप सकती है या उन्हें बेचकर प्राप्त होने वाली राशि को भारत की संचित निधि में जमा किया जा सकता है। इसमें एक राहत की बात यह रखी गई है कि पूजा स्थलों का धार्मिक स्वरूप बरकरार रहेगा और प्राधिकरण के किसी भी फैसले के खिलाफ कानूनी अपील की जा सकेगी।

एक बड़े कदम के रूप में देखा जा रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार ने सत्ता में आने के बाद से ही विदेशी चंदा नियमन अधिनियम यानी एफसीआरए के ढांचे को लगातार मजबूत करने का काम किया है।

इस कड़ी की पहली बड़ी शुरुआत साल 2020 के संशोधनों से हुई थी, जिसने विदेशी धन की प्राप्ति और उसके उपयोग पर कड़े नियंत्रण लागू किए थे। इन बदलावों के तहत विदेशी चंदे के लिए भारतीय स्टेट बैंक की एक विशिष्ट शाखा में खाता खोलना अनिवार्य कर दिया गया था। साथ ही, संस्थाओं के प्रशासनिक खर्चों की सीमा को 50 प्रतिशत से घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया गया था और एक संस्था से दूसरी संस्था को विदेशी धन के हस्तांतरण पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी। इसके अतिरिक्त, संस्था के पदाधिकारियों के लिए पहचान के कड़े नियम भी लागू किए गए थे। इन तमाम बदलावों के बावजूद, साल 2020 के संशोधनों के कार्यान्वयन के दौरान कुछ

ऐसी व्यावहारिक और कानूनी खामियां सामने आईं, जिन्हें दूर करना सरकार अब अनिवार्य मान रही है।

आंकड़ों की गवाही और कानूनी अधर

आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो यह मुद्दा बहुत बड़ा है। एफसीआरए पोर्टल पर 15 जुलाई 2026 तक उपलब्ध जानकारी के अनुसार, देश में 14,449 सक्रिय पंजीकरण हैं, जबकि 22,498 पंजीकरण रद्द किए जा चुके हैं और 15,212 पंजीकरण समाप्त या एक्स्पायर्ड श्रेणी में हैं। इन हजारों रद्द और समाप्त पंजीकरणों से जुड़ी संपत्तियों और फंड की कीमत करोड़ों रुपये में है, जो लंबे समय से कानूनी अधर में लटकी हुई हैं। बिना किसी स्पष्ट जवाबदेही और केंद्रीय प्राधिकरण के, विदेशी धन के सार्वजनिक उद्देश्यों से भटकने या उसके अनधिकृत इस्तेमाल का खतरा हमेशा बना रहता है। प्रस्तावित संशोधन का मूल उद्देश्य यही सुनिश्चित करना है कि विदेशी चंदे से बने संसाधन व्यक्तिगत लाभ के बजाय केवल उन्हीं सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति करें जिनके

लिए वे भारत लाए गए थे।

राष्ट्रीय सुरक्षा और विकास के हित

विदेशी चंदे के नियमन को सख्त करने के पीछे सरकार का सबसे बड़ा तर्क राष्ट्रीय सुरक्षा और विकास के हितों की रक्षा करना है। अतीत में ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जहां विदेशी धन का उपयोग भारत की संप्रभुता के खिलाफ या विकास परियोजनाओं में बाधा डालने के लिए किया गया। साल 2012 में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा परियोजना के खिलाफ हो रहे लंबे विरोध प्रदर्शनों के पीछे कुछ विदेशी सहायता प्राप्त संस्थाओं का हाथ था। उन्होंने तब कहा था कि ऐसे संगठन देश की ऊर्जा जरूरतों और विकासात्मक प्राथमिकताओं को पूरी तरह नहीं समझ रहे हैं। इसके बाद हुई कई जांचों में यह बात पुख्ता हुई कि जिस चंदे को सामाजिक कार्यों के नाम पर लिया गया था, उसे रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट्स के खिलाफ आंदोलनों में मोड़ दिया गया।

साल 2014 में इंटेलिजेंस ब्यूरो की एक रिपोर्ट ने भी इस ओर इशारा किया था कि कुछ विदेशी फंडेड समूह संगठित तरीके से भारत के परमाणु, कोयला, खनन और बुनियादी ढांचे के प्रोजेक्ट्स को रोकने के प्रयास कर रहे हैं। जांच में पाया गया कि विदेशी फंड का इस्तेमाल अक्सर ऐसे अभियानों में किया जाता है जो देश की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करने या महत्वपूर्ण परियोजनाओं पर अंतरराष्ट्रीय दबाव बनाने का काम करते हैं। प्रस्तावित संशोधन इन्हीं खामियों को दूर करने की कोशिश है ताकि विदेशी चंदा केवल घोषित और वैध उद्देश्यों तक ही सीमित रहे। भारत के इस कदम को वैश्विक संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए क्योंकि दुनिया के कई बड़े लोकतंत्रों में विदेशी चंदे के नियमन के लिए इससे भी अधिक सख्त कानून पहले से ही मौजूद हैं।

वैश्विक संदर्भ और संप्रभुता का सवाल

उदाहरण के तौर पर, अमेरिका में फॉरेन एजेंट्स रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत विदेशी सरकारों या संस्थाओं के लिए काम करने वाले किसी भी व्यक्ति या संगठन को अनिवार्य रूप से अपनी हर गतिविधि और वित्तीय लेन-देन का खुलासा करना होता है। इसी तरह के सख्त कानून ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और यूनाइटेड किंगडम जैसे देशों में भी प्रभावी हैं, जो विदेशी हस्तक्षेप और प्रभाव को रोकने के लिए बनाए गए हैं। भारत एक स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र है और उसे अपने राष्ट्रीय हित में कानून बनाने या उनमें संशोधन करने का पूरा संवैधानिक अधिकार है। जब पश्चिमी देश अपनी घरेलू राजनीति और सुरक्षा के लिए कड़े नियम बना सकते हैं, तो भारत के इन प्रयासों पर सवाल उठाना तर्कसंगत नहीं लगता।

न्यायिक समीक्षा और संवैधानिक ढांचा

सरकार का यह भी स्पष्ट मानना है कि प्रस्तावित एफसीआरए संशोधन भारतीय न्यायिक प्रणाली और न्यायिक समीक्षा के दायरे के भीतर हैं। भारत का संविधान किसी भी व्यक्ति या संस्था को यह अधिकार देता है कि यदि उन्हें लगता है कि कोई कानून उनके मौलिक अधिकारों या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है, तो वे उसे सुप्रीम कोर्ट या हाई कोर्ट में चुनौती दे सकते हैं। अतः, इन संशोधनों को केवल नियंत्रण के हथियार के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह पारदर्शिता, सुशासन और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन बनाने का एक प्रयास है। प्रस्तावित परिवर्तनों का उद्देश्य विदेशी चंदे को रोकना नहीं, बल्कि उसकी जवाबदेही और पारदर्शिता को उस स्तर तक ले जाना है जहां उसके दुरुपयोग की कोई गुंजाइश न रहे।

सुशासन और संप्रभुता का संतुलन

अंततः, एफसीआरए कानून में किए जा रहे ये बदलाव भारत के एन-जी-ओ इकोसिस्टम में शुचिता और जवाबदेही लाने की दिशा में एक निर्णायक मोड़ साबित हो सकते हैं। जब यह विधेयक कानून का रूप लेगा, तो यह उम्मीद की जानी चाहिए कि विदेशी चंदे के प्रवाह का बेहतर प्रबंधन होगा और इससे बनी संपत्तियों का उपयोग देश के सार्वजनिक हित में ही किया जाएगा। संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट आने के बाद इस पर होने वाली चर्चा यह तय करेगी कि भारत अपनी आंतरिक सुरक्षा और विदेशी चंदे की आवश्यकता के बीच कितना सटीक संतुलन बना पाता है। राष्ट्रीय संप्रभुता की रक्षा के लिए विदेशी फंड के एक-एक पैसे का हिसाब होना आज के समय की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।





राकेश कुमार

दिल्ली ईवी पॉलिसी 2.0

क्या वाकई साफ होगी आबोहवा?

देश की राजधानी दिल्ली के लिए 'साफ हवा' अब एक बुनियादी जरूरत से ज्यादा एक लक्ष्य बन गई है। हर साल नवंबर से जनवरी के बीच जब धुंध की एक जहरीली चादर दिल्ली को अपनी आगोश में लेती है, तो बहस का पहिया एक बार फिर प्रदूषण पर आकर रुक जाता है। सड़कों पर बढ़ती गाड़ियों की भीड़ और उनके साइलेंसर से निकलता धुआं दिल्ली के फेफड़ों को छलनी कर रहा है। लेकिन अब, 2026 की इस दहलीज पर, दिल्ली एक और बड़ी तकनीकी क्रांति की ओर कदम बढ़ा रही है। 1 जुलाई 2026 से लागू हुई 'दिल्ली इलेक्ट्रिक व्हीकल पॉलिसी 2.0' (ईवी पॉलिसी 2.0) केवल एक सरकारी दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह





दिल्ली के अस्तित्व को बचाने का एक महत्वाकांक्षी संकल्प है। सवाल यह है कि क्या यह नीति वह कर दिखाएगी जो पिछले 25 सालों के तमाम प्रयास नहीं कर पाए?

दिल्ली में वाहनों से होने वाले प्रदूषण को रोकने की कोशिशें कोई नई बात नहीं हैं। इसकी जड़ें साल 2001 के उस ऐतिहासिक फैसले में छिपी हैं, जिसने दिल्ली की सड़कों का रंग बदल दिया था। सुप्रीम कोर्ट ने 31 मार्च 2001 की समयसीमा तय की थी, जिसके तहत दिल्ली के पेट्रोल ऑटो और डीजल बसों को 'कंप्रेसड नेचुरल गैस' यानी सीएनजी में बदलना अनिवार्य कर दिया गया था।

अदालत ने 1998 के अपने फैसले में एक डरावनी चेतावनी दी थी। कोर्ट ने नोट किया था कि 1970 में वाहनों से होने वाला प्रदूषण कुल वायु प्रदूषण का केवल 20 प्रतिशत था, जो 1998 तक बढ़कर 70 प्रतिशत हो चुका था। कोर्ट ने रहवा के बढ़ते प्रदूषण को गिरफ्तार करने के लिए तत्काल कार्रवाई का आदेश दिया था। उस समय सी-एन-जी को 'क्लीन फ्यूल' के तौर पर पेश किया गया था और दिल्ली दुनिया के उन चुनिंदा शहरों में शामिल हो गई थी जहां सार्वजनिक परिवहन पूरी तरह गैस पर चलता था।

लेकिन वक्त के साथ यह समाधान भी छोटा पड़ने लगा। सी-एन-जी आने के बावजूद दिल्ली हर साल घुटती रही। सर्दियों के मौसम में 'एयर क्वालिटी इंडेक्स' यानी ए-क्यू-आई का खतरनाक स्तर पर पहुंचना एक नई 'नॉर्मल' हकीकत बन गई। जनवरी 2026 में 'कमीशन फॉर एयर क्वालिटी मैनेजमेंट' यानी सीएक्यूएमकी एक ताजा रिपोर्ट ने फिर से उसी कड़वे सच को दोहराया है: दिल्ली के भीतर प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत आज भी 'ट्रांसपोर्ट' ही है। रिपोर्ट के अनुसार, चाहे पेट्रोल हो, डीजल हो या सी-एन-जी-वाहनों के टेलपाइप से निकलने वाला उत्सर्जन शहरी हवा को जहरीला बनाने में सबसे बड़ी भूमिका निभा रहा है। अब समय आ गया है एक और बड़े बदलाव का—सी-एन-जी से इलेक्ट्रिक मोबिलिटी की ओर।

ईवी 1.0 से ईवी 2.0 तक का सफर

दिल्ली ने अपनी पहली इलेक्ट्रिक वाहन नीति की घोषणा साल 2020 में की थी। उस समय सरकार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट था—2024 तक दिल्ली में बिकने वाले हर 4 में से 1 वाहन इलेक्ट्रिक होना चाहिए। यानी कुल बिक्री का 25 प्रतिशत हिस्सा इलेक्ट्रिक वाहनों का हो। लेकिन 'वाहन' पोर्टल के आंकड़े बताते हैं कि हकीकत उम्मीदों से काफी दूर रही।

2024 में दिल्ली में कुल 7.11 लाख वाहनों का पंजीकरण हुआ, जिनमें से केवल 85,377 वाहन ही इलेक्ट्रिक या बैटरी से चलने वाले थे। यह कुल पंजीकरण का मात्र 12 प्रतिशत था। साल 2025 में थोड़ी सुधार देखी गई और इलेक्ट्रिक वाहनों के पंजीकरण में 42 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस साल कुल 8.18 लाख वाहनों में से 1.21 लाख इलेक्ट्रिक या हाइब्रिड थे, जो लगभग 15 प्रतिशत बैठता है। हालांकि रफ्तार बढ़ रही थी, लेकिन 25 प्रतिशत के लक्ष्य को हासिल करना अभी भी एक बड़ी चुनौती थी।

यही वह पृष्ठभूमि है जिसने 'ईवी पॉलिसी 2.0' को जन्म दिया। 1 जुलाई 2026 से प्रभावी यह नई नीति 31 मार्च 2030 तक चलेगी, जिसके लिए सरकार ने 15,000 करोड़ रुपये का विशाल बजट आवंटित किया है। यह नीति

केवल सब्सिडी देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक 'डेडलाइन' आधारित बदलाव है जो दिल्ली की सड़कों पर पेट्रोल और डीजल की गाड़ियों के भविष्य को सीमित कर देता है।

दोपहिया वाहनों पर 'सर्जिकल स्ट्राइक'

इस नई नीति की सबसे क्रांतिकारी बात यह है कि पहली बार सुधारों के केंद्र में 'दोपहिया वाहनों' (टू-व्हीलर्स) को रखा गया है। दिल्ली की सड़कों पर चलने वाले कुल वाहनों में से लगभग 67 प्रतिशत हिस्सा दोपहिया वाहनों का है। अब तक प्रदूषण नियंत्रण के तमाम उपायों में बाइक और स्कूटरों को हमेशा छूट दी जाती रही है।

अप्रैल 2026 में पेश की गई 'कंट्रोलर एंड ऑडिटर जनरल' यानी कैग (सीएजी) की रिपोर्ट ने इस विसंगति पर कड़ी आपत्ति जताई थी। कैग ने पाया कि 2017 से 2020 के बीच जब दिल्ली में 5 बार 'ऑड-ईवन' योजना लागू की गई, तो हर बार दोपहिया वाहनों को इससे बाहर रखा गया। रिपोर्ट के अनुसार, 2019 में दिल्ली के कुल पंजीकृत वाहनों में से 66 प्रतिशत (लगभग 75.56 लाख) दोपहिया वाहन थे, जो प्रदूषण के चरम दिनों में भी सड़कों पर धुआं छोड़ रहे थे। 2025 में पंजीकृत 8.18 लाख गाड़ियों में से 5.32 लाख अकेले दोपहिया वाहन थे।

ईवी पॉलिसी 2.0 ने इस कमजोरी को पहचान लिया है। नीति में स्पष्ट आदेश दिया गया है कि 1 अप्रैल 2028 से दिल्ली में केवल इलेक्ट्रिक दोपहिया वाहनों का ही पंजीकरण होगा। इसके साथ ही, 1 जनवरी 2027 से केवल इलेक्ट्रिक थ्री-व्हीलर और माल ढोने वाले व्यावसायिक वाहनों का ही नया पंजीकरण किया जाएगा। इसका मतलब यह है कि पुरानी गाड़ियां तो सड़कों पर रहेंगी, लेकिन नई आने वाली हर

बाइक, स्कूटी और ऑटो इलेक्ट्रिक होगी। सरकार का मानना है कि इन दो श्रेणियों—दोपहिया और व्यावसायिक वाहन—का दैनिक उपयोग बहुत ज्यादा होता है, इसलिए इनका इलेक्ट्रिक होना हवा की गुणवत्ता में सबसे तेज सुधार लाएगा।

सरकार का विजन और चुनौतियां

नई नीति को लॉन्च करते हुए दिल्ली की मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता ने इसे 'सरल और अधिक फायदेमंद' बताया। उन्होंने कहा, रहम एक ऐसी राजधानी का निर्माण कर रहे हैं जो अधिक स्वस्थ और अगली पीढ़ी के लिए तैयार हो। इस नीति की सफलता सड़कों पर ईवी की संख्या से नहीं, बल्कि दिल्लीवासियों के जीवन की गुणवत्ता में आए सुधार से मापी जाएगी।

हालांकि, यह रास्ता इतना आसान नहीं है। दिल्ली के कैबिनेट मंत्री मनजिंदर सिंह सिरसा ने सोशल मीडिया पर स्पष्ट किया कि इसका मतलब पेट्रोल वाहनों का तत्काल अंत नहीं है, लेकिन सरकार का इरादा भविष्य में चार पहिया वाहनों (कार) के लिए भी 'इलेक्ट्रिफिकेशन मैडेट' लाने का है। सरकार एक ऐसा ढांचा तैयार कर रही है जहां प्रदूषण फैलाने वाले और कम कुशल ईंधन वाले वाहनों को हतोत्साहित (डिसइन्सेंटिवाइज) किया

जाएगा।

असली चुनौती बुनियादी ढांचे की है। क्या 2030 तक दिल्ली में इतने चार्जिंग पॉइंट होंगे कि लाखों इलेक्ट्रिक वाहन बिना किसी बाधा के चल सकें? क्या बैटरी की रिसाइक्लिंग और डिस्पोजल के लिए हमारे पास पुख्ता इंतजाम हैं? 15,000 करोड़ रुपये का परिव्यय एक बड़ी राशि है, लेकिन इसका सही क्रियान्वयन ही इस नीति की कामयाबी तय करेगा।

2030 का लक्ष्य

कैग की रिपोर्ट ने यह भी चेतावनी दी थी कि 2016 से 2020 के बीच (कोविड लॉकडाउन को छोड़कर) दिल्ली के प्रदूषण स्तर में कोई स्थायी कमी नहीं देखी गई। इसका मतलब है कि अब तक के उपाय केवल 'बैंड-एड' की तरह थे, जो घाव को कुछ समय के लिए ढकते थे लेकिन उसे भरते नहीं थे।

दिल्ली अब 2001 वाली स्थिति में फिर खड़ी है। जैसे तब पेट्रोल से सी-एन-जी की ओर एक बड़ा रणनीतिक बदलाव हुआ था, आज वैसा ही बदलाव इलेक्ट्रिक की ओर हो रहा है। पेट्रोल-डीजल की उम्र पूरी कर चुके वाहनों पर प्रतिबंध और अब ईवी पॉलिसी 2.0—ये दिल्ली के अस्तित्व की लड़ाई के दो मजबूत स्तंभ हैं।

यदि दिल्ली 2030 तक अपने लक्ष्यों को हासिल कर लेती है, तो यह दुनिया के सामने एक मिसाल होगी कि कैसे एक घनी आबादी वाला महानगर अपनी तकनीकी और राजनीतिक इच्छाशक्ति से अपनी हवा को फिर से सांस लेने लायक बना सकता है। 2001 में हमने इंजन बदला था, 2026 में हम तकनीक बदल रहे हैं। उम्मीद है कि इस बार नतीजा केवल आंकड़ों में नहीं, बल्कि दिल्ली के साफ नीले आसमान में दिखाई देगा।



ब्रिक्स: वैश्विक संतुलन

व भारत का कूटनीतिक संकल्प



श्रीराजेश

अगले महीने जब नई दिल्ली की सड़कों पर ब्रिक्स देशों के झंडे लहराएंगे, तब भारत न केवल 18वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन की मेजबानी कर रहा होगा, बल्कि वह बदलती अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के भविष्य की दिशा भी तय कर रहा होगा। 2012, 2016 और 2021 के बाद यह चौथा अवसर है जब भारत इस प्रभावशाली मंच की कमान संभाल रहा है। ब्रिक्स का विचार—जो प्रमुख उभरती अर्थव्यवस्थाओं को एक मंच पर लाने के लिए दो दशक पहले उपजा था—आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहां सहयोग की संभावनाएं



जितनी विशाल हैं, भू-राजनीतिक चुनौतियां उतनी ही जटिल। भारत की अध्यक्षता का यह कार्यकाल केवल एक रस्मी आयोजन नहीं, बल्कि वैश्विक राजनीति में नई दिल्ली के बढ़ते कद और उसके 'संतुलनकारी' दृष्टिकोण की एक बड़ी अग्निपरीक्षा है।

नवाचार: डिजिटल इंडिया का वैश्विक मॉडल

डिजिटल एकीकरण और नवाचार एक ऐसा क्षेत्र है जहां भारत के पास असाधारण कूटनीतिक ताकत है। भारत का 'डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर' मॉडल, जिसमें यूपीआई और आधार जैसी प्रणालियां शामिल हैं, आज पूरी दुनिया के लिए एक मिसाल बन चुका है। भारत इस तकनीकी अनुभव को ब्रिक्स के साझा एजेंडे में बदलना चाहता है। सीमा-पार डिजिटल भुगतान की सुगमता, सेंट्रल बैंक डिजिटल करेंसी के बीच तालमेल और जिम्मेदार आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर एक समान वैश्विक दृष्टिकोण तैयार करना भारत की प्राथमिकता है। नई दिल्ली का लक्ष्य ब्रिक्स देशों के बीच एक ऐसा तकनीकी सेतु बनाना है जो विकासशील देशों की डिजिटल संप्रभुता की रक्षा कर सके।

सहयोग: सुधारवादी बहुपक्षवाद का एजेंडा

सहयोग का तीसरा स्तंभ सीधे तौर पर भारत की उस पुरानी मांग से जुड़ा है जिसे 'सुधारवादी बहुपक्षवाद' कहा जाता है। भारत का तर्क साफ है: संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी संस्थाएं आज की वैश्विक हकीकत का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। ये संस्थाएं उस दौर की उपज हैं जब दुनिया का बड़ा हिस्सा औपनिवेशिक नियंत्रण में था। ब्रिक्स भारत को वह मंच प्रदान करता है जहां से वह इन वैश्विक संस्थाओं में ग्लोबल साउथ के लिए अधिक प्रतिनिधित्व और निर्णय लेने की शक्ति की मांग कर सके।

हालांकि, यहाँ भारत की रणनीति चीन या रूस से अलग है। नई दिल्ली का उद्देश्य मौजूदा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को पूरी तरह ध्वस्त कर कोई समानांतर या अलग व्यवस्था खड़ा करना नहीं है। इसके बजाय, भारत ब्रिक्स का उपयोग वर्तमान व्यवस्था को भीतर से पुनर्संतुलित करने के लिए करना चाहता है। भारत एक ऐसे खुले और नियमों पर आधारित वैश्विक ढांचे का समर्थन करता है जो अधिक पारदर्शी और जवाबदेह हो। भारत के लिए चुनौती यह होगी कि वह रूस और ईरान जैसे देशों के तीखे रुख और ब्राजील या दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों की चिंताओं के बीच अपनी इस सुधारवादी सोच को कैसे प्रभावी बनाता है।

आर्थिक स्वायत्तता और न्यू डेवलपमेंट बैंक की भूमिका

स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत ब्रिक्स देशों के बीच स्थानीय मुद्राओं में व्यापार और भुगतान

संतुलित रणनीति: ग्लोबल साउथ की मुख्य आवाज

भारत का ब्रिक्स के प्रति नजरिया हमेशा से एक बारीक संतुलन पर आधारित रहा है। नई दिल्ली के लिए ब्रिक्स कोई पश्चिमी विरोधी गुट नहीं है, बल्कि यह विकासशील देशों यानी 'ग्लोबल साउथ' के हितों की रक्षा करने वाला एक सशक्त मंच है। इस वर्ष की थीम—'लचीलापन, नवाचार, सहयोग और स्थिरता का निर्माण'—भारत की इसी दूरगामी सोच को प्रतिबिंबित करती है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अवसर 'मानवता-प्रथम' और जनता-केंद्रित एजेंडे पर जोर दिया है। इसका उद्देश्य ब्रिक्स को महाशक्तियों की स्पर्धितान का अखाड़ा बनने से रोककर उसे व्यावहारिक आर्थिक और तकनीकी सहयोग का एक प्रभावी माध्यम बनाना है। भारत चाहता है कि ब्रिक्स के जरिए दुनिया को यह संदेश जाए कि उभरती अर्थव्यवस्थाएं अब केवल मूक दर्शक नहीं, बल्कि नियम बनाने वाली ताकतें हैं।

लचीलापन: संकटों से सीख और स्प्लाई-चेन की सुरक्षा

प्रेसीडेंसी के चार स्तंभों में रेजीलियेंस सबसे महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षों में दुनिया ने जो कुछ झेला है—चाहे वह वैश्विक महामारी हो, स्प्लाई-चेन की टूटती कड़ियां हों या कड़े आर्थिक प्रतिबंध—उन सबने उभरती अर्थव्यवस्थाओं की नाजुकता को उजागर कर दिया है। भारत अपनी अध्यक्षता के दौरान महत्वपूर्ण एजेंडों कृषि, ऊर्जा और विनिर्माण के क्षेत्रों में एक ऐसी स्प्लाई-चेन बनाने पर जोर दे रहा है जो किसी एक देश या क्षेत्र पर निर्भर न हो। भारत का मानना है कि यदि ग्लोबल साउथ को वाकई स्वतंत्र होना है, तो उसे अपनी जरूरतों के लिए अधिक विविधतापूर्ण और मजबूत ढांचे का निर्माण करना होगा।

प्रणालियों को बढ़ावा देने का प्रबल पक्षधर है। इससे न केवल डॉलर पर निर्भरता घटेगी, बल्कि लेनदेन की लागत में भी कमी आएगी। इस दिशा में 'न्यू डेवलपमेंट बैंक' की भूमिका अत्यंत निर्णायक हो जाती है। भारत चाहता है कि यह बैंक ग्लोबल साउथ की बुनियादी परियोजनाओं के लिए स्थानीय मुद्रा में अधिक कर्ज दे, ताकि विकासशील देश वैश्विक बाजार के उतार-चढ़ाव और किसी तीसरे देश के वित्तीय ढांचे के दबाव से मुक्त रह सकें।

भू-राजनीतिक चुनौतियां और चीन का कारक

भारत की इस महत्वाकांक्षी योजना के सामने चुनौतियों का पहाड़ भी कम ऊँचा नहीं है। सबसे बड़ी बाधा यह है कि ब्रिक्स रणनीतिक रूप से एक समान सोच वाला समूह नहीं है। इसके सदस्यों के बीच वैचारिक मतभेद गहरे हैं। उदाहरण के लिए, रूस और ईरान का पश्चिम के प्रति नजरिया पूरी तरह टकराव वाला है, जबकि भारत के अमेरिका और यूरोप के साथ गहरे रणनीतिक और आर्थिक संबंध हैं। नई दिल्ली को यह सुनिश्चित करना होगा कि ब्रिक्स का मंच केवल पश्चिमी देशों की आलोचना करने का जरिया न बन जाए, क्योंकि ऐसा होने पर इस समूह की साख और उपयोगिता कम हो सकती है।

चीन के साथ संबंध भारत की ब्रिक्स कूटनीति का सबसे पेचीदा हिस्सा हैं। दोनों देश रणनीतिक प्रतिद्वंद्वी हैं और सीमा पर तनाव जगजाहिर है। इसके बावजूद, ग्लोबल साउथ के नेतृत्व और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सुधारों जैसे मुद्दों पर दोनों के हित मेल खाते हैं। भारत की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह चीन के साथ अपने द्विपक्षीय विवादों को ब्रिक्स के व्यापक एजेंडे से कैसे अलग रख पाता है। नई दिल्ली



को यह भी ध्यान रखना होगा कि समूह का विस्तार होने के बाद चीन का प्रभाव इसमें बहुत अधिक न बढ़ जाए।

विस्तार और आपसी विवादों का साया

ब्रिक्स का हालिया विस्तार एक दोधारी तलवार साबित हो रहा है। सदस्यों की संख्या बढ़ने से समूह का वैश्विक वजन तो बढ़ा है, लेकिन किसी एक मुद्दे पर आम सहमति बनाना पहले से कहीं ज्यादा कठिन हो गया है। मई 2026 में नई दिल्ली में हुई ब्रिक्स विदेश मंत्रियों की बैठक इसका ताजा उदाहरण है। ईरान और यूएई के बीच बढ़ते क्षेत्रीय तनाव के कारण वह बैठक बिना किसी साझा बयान के समाप्त हो गई थी। भारत को विवश होकर एक 'अध्यक्षीय बयान' जारी करना पड़ा। यह घटना दिखाती है कि जब समूह के सदस्य खुद आपसी विवादों में उलझे हों, तो ब्रिक्स की एकजुटता बनाए रखना कितना चुनौतीपूर्ण है।

भारत के लिए यह स्थिति विशेष रूप से विकट है क्योंकि तेहरान और अबू धाबी, दोनों ही नई दिल्ली के महत्वपूर्ण रणनीतिक साझेदार हैं। यह पंजाब या पश्चिम एशिया की गुटबाजी नहीं, बल्कि एक वैश्विक जिम्मेदारी है जहां भारत को मध्यस्थ और समाधानकर्ता की भूमिका निभानी है। भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि ब्रिक्स देशों की विविधता उसकी कमजोरी नहीं,

बल्कि उसकी ताकत बने।

कूटनीतिक प्रभाव का नया अध्याय भारत की चौथी ब्रिक्स अध्यक्षता को केवल शिखर सम्मेलन की अंतिम घोषणाओं के नजरिए से नहीं देखा जाना चाहिए। यह भारत के उस विजन का हिस्सा है जहां वह दुनिया को एक ध्रुवीय या दो ध्रुवीय नहीं, बल्कि बहु-ध्रुवीय देखना चाहता है। भारत की कूटनीति का मकसद न तो पश्चिमी व्यवस्था का अंधानुकरण करना है और न ही उसके खिलाफ कोई दीवार खड़ी करना है। भारत वैश्विक शासन के नियमों को इस तरह नया रूप देना चाहता है जहां भारत के अपने हित सुरक्षित रहें और ग्लोबल साउथ को उसका हक मिले।

यह एक अत्यंत कठिन और जोखिम भरा काम है, लेकिन भारत का बढ़ता आर्थिक और कूटनीतिक प्रभाव उसे यह अवसर प्रदान करता है। 2026 की यह अध्यक्षता इस बात का प्रमाण होगी कि क्या भारत ब्रिक्स को भू-राजनीतिक शोर-शराबे से निकालकर ठोस वैश्विक सहयोग के मंच में तब्दील कर सकता है। यदि नई दिल्ली इस शिखर सम्मेलन के जरिए कोई ठोस आर्थिक और तकनीकी रूपरेखा पेश कर पाती है, तो यह न केवल ब्रिक्स के भविष्य के लिए, बल्कि भारत के 'विश्वगुरु' बनने के दावे के लिए भी एक मील का पत्थर साबित होगा।

DISTINCTIVE **STYLE**
THRILLING **POWER**



C A M R Y

POWERFUL.
LUXURIOUS.

Awesome



- ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
- COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
- COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE

Let's 360°

Media Consultancy

Web solution

Advertising

Publication

Languages Services

Survey & Research

Branding

AV Production

Campaign management

Event organizer

PR partner, PR associate

Content writer & provider

Media analyst

URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.

**NOW!!
OUR CONSULTANT
WILL GET BACK
TO YOU IN 24
HOURS AND PUT
YOU IN TO THE HIGH
GROWTH PATH**



URJAS MEDIA
VENTURE

SMS 'BUSINESS GROWTH'
TO +91-8826-24-5305 OR
E-MAIL info@urjasmedia.com

BEAT THE COMPETITION
www.urjasmedia.com